कार्यशाला

आदर्श शिक्षक : आचरण एवं व्यवहार

१ मार्च २०११

महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय

जंगल धूसड़, गोरखपुर

सम्पादक

प्रदीप कुमार राव

आयोजक

महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय

जंगल धूसड़, गोरखपुर

कार्यशाला

१ मार्च, २०११ ई.

आदर्श शिक्षक : आचरण एवं व्यवहार

जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है, वह गुरु कहलाता है। किसी आत्मा में इस शक्ति का संचार करने के लिए आवश्यक है कि पहले तो जिस आत्मा से संचार होता है, उसमें स्वयं इस संचार की शक्ति मौजूद रहे। यथार्थ गुरु में अपूर्व योग्यता होनी चाहिए। जो स्वयं अज्ञानी हो या जिसमें स्वयं का प्रकाश न हो वह न तो मार्गदर्शन दे पायेगा और न ही अज्ञान के तिमिर को दूर कर सकेगा। जिन आचार्यों का सत्य और ज्ञान सूर्य के समान भास्वर होता है, वे संसार में सर्वोच्च महापुरुष हैं और उनकी उपासना ईश्वर-रूप में की जाती है।

गुरु का हृदय और मन पवित्र, निष्कपट, निष्पाप, त्यागपूर्ण, समर्पित एवं चरित्र जैसे उच्च आदर्शों से युक्त हो। वह पूर्ण शुद्ध-चित्त होना चाहिए तभी उनके शब्दों का मूल्य होगा, क्योंकि वह केवल तभी सच्चा संचारक हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार गुरु में ज्ञान का प्रबल स्पन्दन होना चाहिए जिससे वह सुचारु रूप से शिष्य-मन में संचरित हो जाय। गुरु ही सर्वोच्च ज्ञान देता है, वह न तो पैसे से खरीदा जा सकता है और न ही पुस्तकों से प्राप्त किया जा सकता है।

महात्मा गाँधी ने शिक्षकों से कुछ अपेक्षाएँ की हैं। उनके अनुसार शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, सहानुभूति एवं श्रम का पुजारी होना चाहिए, तभी वह विद्यार्थियों को गुरु, पथ-प्रदर्शक और सहयोगी की भाँति आगे बढ़ा सकता है। शिक्षक को चरित्रवान, कर्तव्यनिष्ठ, धार्मिक, पवित्रात्मा, मिलनसार, संयमी, क्षमाशील तथा क्रियाशील होना चाहिए। उसे अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता, जिज्ञासु, विनोदप्रिय, बड़ी आकांक्षाओं वाला और सभी समस्याओं को हल करने की क्षमता वाला होना चाहिए। उसमें अपने कार्यों के प्रति कभी भी उपेक्षा या उदासीनता नहीं होनी चाहिए बल्कि लगातार काम करते रहना चाहिए, तभी वह विद्यार्थियों का आदर्श और अनुकरणीय हो सकता है। आर.एन. रंगा के अनुसार अध्यापक का कार्य प्रकाश का स्तम्भ, एक संकेत बोर्ड, एक सन्दर्भ पुस्तक, एक शब्दकोश, एक द्रावक, एक मिश्रण प्रक्रिया को गति देने वाले के रूप में होता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **सत्यार्थ प्रकाश** (सं.३) में लिखा है कि जो अध्यापक पुरुष या स्त्री दुराचारी हों उनसे शिक्षा न दिलायें किन्तु जो विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने एवं शिक्षा देने के योग्य हैं। उन्होंने **आचार्योदेश रत्नमाला** में उल्लेख किया है कि जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विधाओं को बढ़ावा देवे उसको आचार्य कहते हैं। पण्डित मदन मोहन मालवीय के शब्दों में **अध्यापक को विषय का पण्डित, छात्रों से पिता तुल्य स्नेह एवं प्रेम रखने वाला, संचयी अध्यवसायी, चरित्रवान, मृदुभाषी, सहनशील होना चाहिए।** गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षकों के प्रति अभिमत है कि **शिक्षक में विनयशीलता, सहनशीलता तथा धैर्यशीलता के गुण होने चाहिए।** आगे उन्होंने लिखा है कि **जिस मार्ग की तलाश में हम इधर-उधर भटकते हैं, अन्त में हम इस अडिग सत्य पर पहुँचते हैं कि शिक्षा केवल शिक्षक द्वारा ही दी जा सकती है।**

डॉ. जाकिर हुसैन के अनुसार **शिक्षक में जो सबसे बड़ी बात है वह यह है कि उसे विषय ज्ञान के साथ-साथ तमाम बाह्य संसार से जुड़े विषयों की जानकारी हासिल हो। उसे सद्व्यवहार, नैतिकता,**

आध्यात्मिकता, संस्कृतिनिष्ठता, सामाजिकता तथा धर्मनिरपेक्षता आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हुमायूँ कबीर ने अपनी पुस्तक 'भारतीय शिक्षा दर्शन' में लिखा है कि **भारत के शिक्षकों का यह विशेषाधिकार और कर्तव्य है कि वे समस्त विश्व के लिए नयी सभ्यता के संश्लेषण और विकास के इस नये प्रयत्न में मुख्य अभिकर्ताओं में सम्मिलित होकर कार्य करें।**

वर्तमान परिवेश में उत्तरोत्तर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ते स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की संख्या एवं उनके राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्थापन ने उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को जीर्ण-शीर्ण स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है। उसमें भी शिक्षकों की स्थिति बद से बदतर है। एक ओर जहाँ उनकी संख्या सीमित है, वहीं दूसरी कई शिक्षण संस्थाओं द्वारा उनका अनुमोदन उच्च शिक्षा की बदतर स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है। ऐसे शिक्षकों द्वारा शिक्षण, जो उसके लिए योग्य ही नहीं हैं, उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर आघात है। यहाँ तक तो ठीक है पर अनेक ऐसे शिक्षण संस्थान हैं जहाँ शिक्षक केवल अभिलेखों तक ही सीमित हैं। इस स्थिति में उनके द्वारा शिक्षण कार्य, आचरण एवं सद्व्यवहार पर परिचर्चा एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

अतः उक्त सन्दर्भ में विचार-विमर्श की आवश्यकता को महसूस करते हुए ०१ मार्च, २०११ को महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर में '**आदर्श शिक्षक : आचरण एवं व्यवहार**' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन तय किया गया। प्रातः ६.३० बजे से प्रारम्भ कार्यशाला विषय विशेषज्ञों के शोधपूर्ण व्याख्यान एवं परिचर्चा के साथ सम्पन्न हुई।

प्रथम सत्र - प्रातः ०६.३० से पूर्वाह्न ११.३० बजे आदर्श शिक्षक

द्वितीय सत्र - अपराह्न १२.३० से अपराह्न ०२.०० बजे छात्र एवं समाज के प्रति उत्तरदायित्व एवं स्थिति

कार्यशाला में आपकी सक्रिय सहभागिता से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक पहल को गति मिलेगी। आप सादर आमंत्रित हैं। कार्यशाला के विषय के किसी पक्ष पर आप अपना लिखित वक्तव्य ही देने की कृपा करें। कार्यशाला का संक्षिप्त वृत्त प्रकाशित किया जायेगा एवं सम्बन्धित निकायों/ व्यक्तियों को भेजा जायेगा।

प्रस्तावित विचारणीय बिन्दु एवं समय-सारिणी

प्रथम सत्र ६.३०-११.३०	• **आदर्श शिक्षक** : एक शिक्षक की आदर्श स्थिति के लिए उसको क्या करना चाहिए? आचरण एवं कार्य व्यवहार कैसा होना चाहिए?
द्वितीय सत्र १२.००-१.३०	• **छात्र एवं समाज के प्रति उत्तरदायित्व एवं स्थिति** : उत्तरदायित्व बोध कैसे हो? क्या किताबी शिक्षा देना ही उत्तरदायित्व है या एक विशेष साँचे में ढालना? कैसे उत्तम परिवेश दिया जाय जिससे छात्र समाज एवं देश के प्रति जवाबदेह बन सकें?
तृतीय सत्र २.३०-४.००	• **वर्तमान में शिक्षक की स्थिति एवं अपेक्षा** : शिक्षकों की वर्तमान स्थिति क्या है, उसमें वह कैसे अपना सर्वोत्तम दे सकता है? उनसे अपेक्षा क्या की जाती है? वर्तमान आर्थिक परिवेश में वे क्या अपेक्षा करते हैं?

विजय कुमार चौधरी
संयोजक/प्रभारी भूगोल विभाग
महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय
जंगल धूसड़, गोरखपुर

परिचर्चा में

विषय विशेषज्ञ

१. प्रो. रामअचल सिंह – पूर्व आचार्य, भौतिकी, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
– पूर्व अध्यक्ष, उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश
– पूर्व कुलपति, राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

२. डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय – पूर्व प्राचार्य एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार, ग्राम/पो०- बालापार, जिला-गोरखपुर

३. डॉ. योगेन्द्र पाल कोहली – महासचिव, स्वदेशी विज्ञान प्रवाह (विज्ञान भारती), गोरखपुर परिक्षेत्र
प्रवक्ता, रसायन विज्ञान, बुद्ध स्नातकोत्तर पी.जी. कालेज, कुशीनगर

४. डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह – अध्यक्ष, रक्षा अध्ययन विभाग
दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर पी.जी. कालेज, गोरखपुर

५. डॉ. राजशरण शाही – उपाचार्य, बी.एड. विभाग,
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर

सहभाग

६. डॉ. नीरज कुमार सिंह – प्रभारी, वाणिज्य, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

७. डॉ. सुनील कुमार प्रसाद – प्रवक्ता, भूगोल, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर

८. डॉ. प्रमोद कुमार, प्रवक्ता – प्रवक्ता, भूगोल, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर

१०. डॉ.सुनील कुमार गौतम – प्रवक्ता, इतिहास, चन्द्रप्रभा मौर्य महिला महाविद्यालय, मथौली, बस्ती

११. डॉ.कृष्णदेव पाण्डेय – प्रवक्ता, वाणिज्य, सेण्टएण्ड्रयूज पी.जी. कालेज, गोरखपुर

१२. शुभ्रा श्रीवास्तव – वरिष्ठ प्रवक्ता, बी.एड., किसान पी.जी. कॉलेज, बहराइच

१३. डॉ. भारती सिंह – शोध सहायक, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

१४. डॉ० मुरली मनोहर तिवारी – प्रवक्ता, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

१५. डॉ. प्रदीप राव – प्राचार्य, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

१६. डॉ. विजय चौधरी – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

१७. डॉ. आर.एन. सिंह – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

१८. डॉ. स्नेहलता त्रिपाठी – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

१९. डॉ. शिवकुमार बर्नवाल – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२०. डॉ. अविनाश प्रताप सिंह – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२१. डॉ. शालिनी सिंह – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२२. श्री लोकेश कुमार प्रजापति – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२३. श्रीमती कविता मन्ध्यान – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२४. श्री पुरूषोत्तम पाण्डेय – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२५. श्री संतोष कुमार – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२६. डॉ. अभय कुमार श्रीवास्तव – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२७. डॉ. प्रवीन्द्र कुमार – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२८. श्री प्रकाश प्रियदर्शी – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

२९. डॉ. राजेश शुक्ल – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३०. श्री सत्यप्रकाश सिंह – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३१. डॉ. आरती सिंह – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३२. श्री सुभाष गुप्त – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३३. श्री श्रीकान्त मणि त्रिपाठी – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३४. श्री नन्दन शर्मा – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३५. श्री मनोज वर्मा – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३६. डॉ. मनीषा कपूर – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३७. श्री ज्ञानेश्वर सिंह – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

३८. श्री सुबोध कुमार मिश्र – प्रवक्ता, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय जंगल धूसड़, गोरखपुर

शिक्षा का मनोगत

शिक्षा कहती है-मैं सत्ता की दासी नही हूँ। कानून की किंकरी नहीं हूँ। ना तो मैं विज्ञान की सखी हूँ। ना अर्थशास्त्र की बांदी हूँ। मैं कला की प्रतिहारी भी नहीं हूँ।

मैं तो धर्म का पुनरागमन हूँ। मानव की बुद्धि, हृदय एवं समस्त इन्द्रियों की मैं स्वामिनी हूँ। मानवशास्त्र एवं समाजशास्त्र मेरे चरण हैं। कार्य और कला मेरे हाथ हैं। निरीक्षण तथा तर्क मेरी आँखें हैं। धर्म मेरा हृदय है तो स्वातंत्र्य मेरा श्वाँस है। इतिहास मेरे कान हैं तो विज्ञान मेरा मस्तिष्क है। उत्साह और उद्योग मेरे फेफड़े हैं। धर्म मेरा व्रत है और श्रद्धा मेरा चैतन्य है। ऐसी मैं जगदम्बा हूँ। जगदात्री हूँ। मेरा उपासक कभी भी जीवन मार्ग में भटक नहीं सकता। वह पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को प्राप्त करेगा तथा मानव जीवन के चरम लक्ष्य का अनुगामी होगा।

परिचर्चा

प्रो. राम अचल सिंह-

किसी राष्ट्र की गुणवत्ता निर्भर करती है, वहाँ के नागरिकों की गुणवत्ता के ऊपर। नागरिकों की गुणवत्ता निर्भर करती है, वहाँ की शिक्षा की गुणवत्ता के ऊपर और शिक्षा की गुणवत्ता निर्भर करती है, वहाँ के शिक्षकों की गुणवत्ता के ऊपर। अतएव यदि किसी राष्ट्र को सर्वगुण सम्पन्न बनाना है तो वहाँ के शिक्षकों के आचरण व व्यवहार पर विचार करना समीचीन होगा। आदर्श शिक्षक में अधोलिखित गुण होना चाहिए-

१. **शिष्ट आचरण** : शिक्षक का आचरण उत्तम, श्रेष्ठ व सुन्दर होना चाहिए। शिक्षक वह दीप्ति स्तम्भ है जो वह स्वतः के आचरण से विद्यार्थियों को प्रेरित करता है और राष्ट्र निर्माण के कार्य में लगाता है। सर्वप्रथम कोई भी व्यक्ति अपने आचरण से ही प्रभावित करता है।

२. **मृदुभाषी** : वाणी वह अस्त्र है जो किसी को मित्र व शत्रु बनाती है। 'वशीकरण एक मंत्र है, परिहर वचन कठोर।' वाणी से ही हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश व घेरलू संस्कार आदि का परिचय प्राप्त होता है। मृदुवाणी केवल शिष्टाचार का ही द्योतक नहीं है, अपितु यह परस्पर आत्मीयता व सद्भाव का भी मार्ग प्रशस्त करती है। कुटिल वाणी का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे तो अच्छा है मौन रहना। मौन सबसे बड़ा सम्भाषण है। स्वर मीठा, कोमल, नम्र तथा रोबीला होना चाहिए। उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट एवं भाषा सरल होनी चाहिए।

३. **स्नेह व सहानुभूति** : सभी के साथ एक सा व्यवहार, जो न्यायी व निष्पक्ष हो एवं स्नेह व सहानुभूति से युक्त हो, होना चाहिए। शिक्षक व शिष्य के बीच मित्रवत सम्बन्ध होना चाहिए। व्यवहार विमल, स्नेह से स्निग्ध होना चाहिए। झिड़कना या दण्ड देना यह भी स्नेह से होना चाहिए।

४. **प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व** : शिक्षक अच्छा, दृढ़ निश्चयी, नियमों का पालन करने वाला, कुशल, व्यावहारिक, सभी दृष्टियों से योग्य व क्षमतावान और अनुशासित होना चाहिए ताकि उसके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े।

५. **व्यवहार कुशलता** : शिक्षक को व्यवहार कुशल होना चाहिए ताकि अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन सुगमतापूर्वक सम्पन्न कर सके। कठिन परिस्थितियों में भी कार्य सम्पादन भली-भाँति कर सके और घबराये न।

६. **धैर्य व सहनशीलता** : किसी भी परिस्थिति में शिक्षक को धैर्य नहीं खोना चाहिए और उसे सहनशील होना चाहिए। क्रोध नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे अन्याय होने की सम्भावना रहती है।

७. **रुचि व उत्साह** : रुचि, लगन व कठिन परिश्रम से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन भली-भाँति करना चाहिए; यह सफलता की कुञ्जी है।

८. **विषय ज्ञान** : शिक्षक की सफलता केवल उसके गुणों और विशेषताओं पर ही नहीं अपितु उसके ज्ञान पर भी निर्भर करता है। इसलिए विषय ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है। साथ ही ज्ञान बढ़ाने की दृष्टि से उसे स्वाध्याय भी करना चाहिए। गुणी के साथ ज्ञानी होना चार चाँद लगाने जैसा है।

९. **नियंत्रण शक्ति** : गुण व ज्ञान के साथ नियंत्रण शक्ति भी यदि विद्यमान हो तो मानो सोने में सुगन्ध है। नियंत्रण शक्ति न होने के कारण आज्ञाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

१०. **लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान** : विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। समाज के लिए विद्यार्थी उपयोगी हों और सामाजिक समरसता का भाव उत्पन्न हो इस दृष्टि से प्रयास किया जाना चाहिए। एकता व अखण्डता का भाव उत्पन्न हो।

११. **ध्येय के प्रति निष्ठा** : जब लक्ष्य के प्रति विद्यार्थी के मन में अटूट श्रद्धा व विश्वास उत्पन्न होता है तो वह असाधारण प्रतिभा का परिचय देने लगता है और सत्य पर चलने लगता है।

१२. **परिश्रमशीलता** : परिश्रम से प्रतिभा विकास के अनेक द्वार खुल जाते हैं। शिक्षक को सोद्देश्य, पवित्र भाव व सकारात्मक दृष्टिकोण से हमेशा कठिन परिश्रम करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

१३. **सम्पर्क, स्नेह व संस्कार** : महाविद्यालय में विद्यार्थी शिक्षक के सम्पर्क में आता है। यदि विद्यार्थी को सम्पर्क में आने के बाद उसे स्नेह दिया गया तो वह शिक्षक से जुड़ता है। उसका लगाव तभी बना रहेगा जब हम उसे संस्कारित करें। अतएव सम्पर्क व स्नेह के माध्यम से विद्यार्थियों को संस्कारित किया जाना चाहिए।

१४. **सेवा भाव** : शिक्षण कार्य सेवा भाव से करना चाहिए। शिक्षक तभी पूर्णरूपेण देने योग्य होगा जब उसके अन्दर सेवा भाव होगा।

१५. **नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य** : शिक्षक को नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण होना चाहिए। उसको अपने आचरण से, सद्वृत्ति से एवं अपने सद्कार्यों से विद्यार्थियों को नैतिक गुणों की शिक्षा देनी चाहिए।

१६. **शिक्षण कला** : शिक्षण एक कला है। उसी भावना से शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए।

१७. **निर्भीकता** : शिक्षक निर्भीक होना चाहिए। जो कार्य ठीक है उसे सम्पादित करना और यदि गलत है तो कितना भी दबाव हो तो भी उसे इन्कार कर देना। किसी भी स्तर पर गलत बातों से समझौता न करना।

१८. **राष्ट्र प्रेम** : शिक्षक अपने आचरण से राष्ट्र भक्त युवा पीढ़ी का निर्माण करने वाला हो। उसे राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रीय स्वाभिमान, इतिहास व संस्कृति से विद्यार्थियों को जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। उनके अन्दर राष्ट्रीय चेतना व एकाग्रता का भाव उत्पन्न कर सके।

१९. **लोक कल्याण** : विद्यार्थियों के हृदय की विशालता को बढ़ाने और अन्तःकरण की गहराई उत्पन्न करने वाली शिक्षा देनी चाहिए ताकि उनके अन्दर समता व बन्धुत्व का भाव उत्पन्न हो और समाज के लिए कल्याणकारी कार्य सम्पादित कर सकें।

२०. **प्रतिबद्धता** : विद्यार्थियों को समाज के प्रति प्रतिबद्धता का भाव जागृत कर सकें। राष्ट्र को जानें, पहचाने व समझें और वतन के प्रति जीने की प्रेरणा ग्रहण करें।

२१. **प्रबन्धन क्षमता** : शिक्षकों के अन्दर प्रबन्धन क्षमता भी होनी चाहिए क्योंकि शिक्षा के अतिरिक्त उन्हें प्रबन्धकीय कार्यों में भी सहयोग करना पड़ता है।

शिक्षक शिक्षा की धुरी होता है। शिक्षक जैसा चाहे, वैसा वह विद्यार्थियों को बना सकता है। अतएव यदि राष्ट्र को वैभवशाली बनाना है तो शिक्षकों को गुणी होना ही पड़ेगा। बिना शिक्षक के गुणी हुए शिक्षा राष्ट्र के लिए कभी भी कल्याणकारी नहीं हो सकती है। शिक्षक अपनी प्रामाणिकता, ईमानदारी, निष्ठा एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण के भाव से ओत-प्रोत हो करके विद्यार्थियों को ज्ञानार्जन हेतु प्रेरित करता है तो वह राष्ट्र को सशक्त, वैभवशाली एवं उच्चतम शिखर तक ले जाने में सफल होगा। यदि शिक्षक सच कहने से डरेगा या हिम्मत नहीं रखेगा तो देश की समस्याएँ पर्वताकार रूप धारण कर लेंगी।

डॉ० वेद प्रकाश पाण्डेय-

आदर्श शिक्षक के गुण, व्यवहार और आचरण पर विस्तृत निबन्ध न लिखकर अपने स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन और अनुभव के आधार पर अर्जित ज्ञान को संक्षेप में बिन्दुवार लिखना उचित प्रतीत हो रहा है। अतः निवेदन है-

- आदर्श शिक्षक वह हो सकता है जो अपनी रुचि-प्रकृति से शिक्षक होना चाहता हो। मजबूरी में, वृत्ति के लिए कोई भी शिक्षक हो सकता है किन्तु वह आदर्श नहीं हो सकता।
- आदर्श शिक्षक के लिए मनोविज्ञान सहित अन्य विषयों के सामान्य ज्ञान के साथ अपने विषय का विशिष्ट ज्ञान आवश्यक है।
- उसे अभिव्यक्ति और विश्लेषण में सक्षम होना चाहिए। शिक्षक, वकील और नेता के लिए यह सामर्थ्य जरूरी है।
- शिक्षक को सादगी पसंद और शीलवान होना चाहिए। उसे कक्षा के बाहर भी वैसा ही दिखना चाहिए जैसा कक्षा में।
- अच्छे शिक्षक के लिए वाणी और चरित्र का संयम आवश्यक है।
- छात्र के प्रति करुण, ममत्वभरा, वात्सल्य भावसम्पन्न होना चाहिए और सहयोग तत्पर भी।
- भाषा का स्तरीय ज्ञान होना चाहिए। आज इसकी कमी पग-पग पर अनुभव की जा रही है।
- कक्षा में तैयारी के साथ जाना चाहिए। किसी छात्र के किसी प्रश्न का सही उत्तर ज्ञात न होने पर उसे गलत उत्तर बताने से सदैव बचना चाहिए। निःसंकोच भाव से 'कल बतायेंगे' कहना चाहिए। कक्षा से बाहर होते ही सही उत्तर की तलाश में जुट जाना चाहिए। दूसरे दिन कक्षा में सबसे पहले उत्तर बताकर आगे बढ़ना चाहिए।
- बच्चों द्वारा प्रश्न पूछने पर न झुँझलाना चाहिए न ही उन्हें हतोत्साहित करना चाहिए। हाँ, किसी के अनर्गल, असंगत प्रश्न पर मर्यादित टिप्पणी कर देनी चाहिए।
- शिक्षक को समय के अनुशासन के प्रति सजग रहना चाहिए।
- परीक्षा में कदाचार के खिलाफ रहना चाहिए।
- मूल्यांकन में ईमानदार और नैतिक रहना चाहिए। मार्किंग की जगह मूल्यांकन करना चाहिए। आज के अधिकांश शिक्षक, इस स्तर पर अनैतिक हैं।
- अच्छे शिक्षक में गम्भीरता होती है। गम्भीरता के साथ मर्यादित विनोदप्रियता भी जरूरी है।
- आदर्श शिक्षक आजीवन विद्यार्थी होता है। पढ़ते रहना उसका स्वभाव होता है।
- शिक्षक की सोच सकारात्मक और दृष्टि दूरंदेशी होनी चाहिए। आशावादी होना उसे शक्ति-सम्पन्न बनाता है।
- बच्चों के सामने अपने कुलपति, प्राचार्य और सहकर्मियों की निन्दा-आलोचना आदर्श शिक्षक की जीवन-संहिता में नहीं होती।
- सस्ती लोकप्रियता से दूर रहना श्रेष्ठ शिक्षक का एक विशेष गुण होता है।
- आदर्श शिक्षक खुशामदी नहीं होते। उन्हें अपनी खुशामद भी पसंद नहीं होती।
- बच्चों से मर्यादित दूरी रखना उत्तम शिक्षक के लिए जरूरी आचार-संहिता का अनिवार्य गुण(धर्म) है।
- आदर्श शिक्षक अपने छात्र की प्रत्येक कमजोरी/त्रुटि/दोष को सुधारता है, उसे नजरअन्दाज नहीं करता, क्षमा तो करता ही नहीं।

- आदर्श शिक्षक अपने अज्ञान को छिपाता नहीं है, उसे दूर करने को उद्यत रहता है।
- बड़ा शिक्षक बनने के लिए अपने सम्मुख किसी श्रेष्ठ-कुशल-समर्पित-साधक शिक्षक का आदर्श रखना चाहिए। 'य एव श्रद्धः स एव सः' को सिद्ध करना चाहिए।
- सिर्फ परीक्षा उत्तीर्ण कराना या कुछ सूचनाएँ देना बड़े शिक्षक का काम नहीं। बड़ा काम है बच्चे को दृष्टि देना, विजन देना, उसे कुछ होने, करने, बनने की प्रेरणा देना। उसकी आँखों में सपना जगा देना। यहाँ किसी विचारक के मूल शब्द देना उचित है-

  "A mediocre teacher tells, a good teacher explains, a superior teacher demonstrates and an exceptional teacher inspires."
- उत्तम शिक्षक ज्ञान देता है, विवेक को खोलता है। सूचनाएँ तो पुस्तकों से, इन्टरनेट से भी मिल सकती हैं। ज्ञान गुरु से ही मिलता है। ''गुरु बिनु होहिं कि ज्ञान। ज्ञान कि होहिं विराग बिनु।।'' बाबा तुलसी के उपर्युक्त शब्द बड़े काम के हैं।
- आदर्श शिक्षक सज्जन, सहज, सहृदय, उदार, अकुण्ठ और अनुशासित होता है। वह आतंक का पर्याय नहीं होता।
- साहित्य के शिक्षक पाठ्यक्रम के शृंगारिक स्थलों को प्रायः छोड़ देते हैं। ऐसे स्थलों की उपेक्षा शिक्षक की कमजोरी जाहिर करती है। ऐसे स्थलों की, साधारण भाषा में, रस ले-लेकर व्याख्या शिक्षक की नादानी कही जाती है। आदर्श शिक्षक ऐसे स्थल की न अनदेखी करेगा, न ही उसकी कुरुचिपूर्ण-भोंड़ी व्याख्या। वह गम्भीरता के साथ, मर्यादित तरीके से, शिष्ट भाषा में उसकी सांकेतिक व्याख्या करेगा। आज के शिक्षक के सामने 'सेक्स एजुकेशन' देने की चुनौती विद्यमान है। सरकार इस उपक्रम में लगी है। पाठ-योजना बना रही है। भाषा के मानक तैयार हो रहे हैं। किशोर वय के छात्र-छात्राएँ अपने सम्मुख उपस्थित हो रहे नित नये प्रश्नों-समस्याओं से दो-चार होते हैं। उनकी समस्या को एक कवि ने बेहतर तरीके से सामने रखा है- ''विषय नया भाषा जटिल, गुरुजन सब निरुपाय।
  कैसे पढ़ लूँ उमर का, सोलहवाँ अध्याय?''

शिक्षक को इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए और शान्तचित्त, संयत व शिष्ट भाषा में अपेक्षित गरिमा के साथ, यौवन की देहरी पर पाँव रखने वाले किशोर-किशोरियों के सम्मुख उपस्थित इस रहस्यमयी नवीन पाठ-योजना के अध्यापन के लिए मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए।

डॉ० योगेन्द्र पाल कोहली-

उच्च शिक्षा यानी मानव जीवन की सार्थकता और मानव जीवन की सामर्थ्य अर्थात् हमारी प्राथमिक आवश्यकताएँ पूर्णता की दिशा में बढ़ें; हम अपने अधिकार एवं कर्तव्य दोनों से ही परिचित हों एवं मानव उदारता और विनयशीलता को प्राप्त करें। आजादी की लड़ाई के दौरान हम भारतीयों ने युग-युग से संजोए सपने को हर मंच पर रखा था; ज्ञान यानी इल्म के साथ, कौशल यानी हुनर को जोड़कर, व्यक्ति को इतना योग्य यानी आलिम बनाने का सपना था कि हर व्यक्ति अपनी रोटी कमा सके और सिर ऊँचा कर, जी सके। आजादी मिलने के बाद हमारे संविधान निर्माताओं ने उच्च शिक्षा प्राप्ति के केन्द्र में भारत के ''जन-गण-मन'' को ही सर्वोच्च प्राथमिकता दी थी; यानी उच्च शिक्षा प्राप्त हर व्यक्ति के पास जीवन-मूल्य रूपी वस्त्र होंगे। उद्योगीकरण/आधुनिकीकरण की दौड़ में भी माँ-वसुधा का कल्याण रूपी पाथेय होगा।

आज उच्च शिक्षा के केन्द्र बढ़े हैं, उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या बढ़ी है। आज सारी दुनिया

में भारत के युवाओं ने ज्ञान-कौशल के क्षेत्र में अपनी उत्कृष्टता को, प्रवीणता को प्रतिष्ठापित किया है। निश्चित रूप से इसका श्रेय इन भारतीय युवकों को उनके घर/परिवार में मिले संस्कारित वातावरण को एवम् प्राथमिक से उच्च शिक्षा के केन्द्रों में कार्यरत शिक्षकों को जाता है; लेकिन इकोनॉमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट (२००७) के अनुसार २०१२ तक भारत आविष्कारक रैंकिंग में ५६वें स्थान पर और चीन ५०वें स्थान पर होगा। उच्च शिक्षा में कार्यरत हम सब यह भली-भाँति जानते हैं कि प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों का विश्वस्तर पर यश/कीर्ति के कारण थे-

१. कार्य संस्कृति,

२. पारदर्शिता,

३. रोल माडल के रूप में शिक्षक की छवि।

आइए, हम विचार करें- इन तीनों क्षेत्रों में गुणवत्ता की दृष्टि से हम कैसे आगे बढ़ें।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या विश्वविद्यालय/महाविद्यालय स्तर पर उच्च शिक्षा सम्बन्धी सारे नियम कानून आज मात्र कागजों पर ही सुशोभित हो रहे हैं। डॉ. सैम पित्रोदा, अध्यक्ष, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने भी डॉक्टरेट में लगने वाले समय को लेकर चिन्ता व्यक्त की है। विद्यार्थी को पहले विश्वविद्यालय स्तर पर पीएच.डी. पात्रता-परीक्षा देनी होती है। पंजीकरण के बाद थीसिस जमा होने तक चार-पाँच साल का समय लगता है। फिर थीसिस अवार्ड होने की अन्तहीन प्रक्रिया आरम्भ होती है।

उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय 'क' से पंजीकृत शोध छात्रा 'ख' जिन्होंने हृदय रोगों पर वानस्पतिक औषधियों के प्रभाव पर कार्य किया एवं आई.सी.एम.आर., नयी दिल्ली में जे.आर.एफ. एवं एस.आर. एफ. रहीं, ने वर्ष २००२ में अपनी थीसिस जमा की। २००७ में उन्हें विश्वविद्यालय से बताया गया कि थीसिस में कुछ आपत्तियाँ लगने के कारण दोबारा थीसिस जमा करनी होगी। २००८ में दोबारा थीसिस जमा हुई, जो २००९ में अवार्ड हुई। इस प्रकार १९९७ में शुरू हुई पीएच.डी. २००९ में पूर्ण हुई अर्थात् पीएच.डी. पूर्ण होने में लगा कुल समय लगभग १२ वर्षों का रहा।

आज 'ख' मेडिकल स्टोर चला रही हैं, क्योंकि पीएच.डी. अवार्ड होने पर भी यदि वे किसी महाविद्यालय में प्रवक्ता पद के लिए आवेदन करती हैं तो १०-१२ हजार रुपये से अधिक का वेतन कोई नहीं प्रदान करेगा, जबकि मेडिकल स्टोर से वे २०-२५ हजार रुपये से अधिक अर्जित कर लेती हैं।

विश्वविद्यालयों में भ्रष्टाचार एवं बदहाली का आलम यह है कि किसी-किसी अभ्यर्थी की मौखिक परीक्षा (Viva) थीसिस जमा होने के छः से आठ महीने के भीतर हो जाती है तो किसी-किसी अभ्यर्थी की मौखिक परीक्षा छः से आठ साल बाद भी नहीं होती।

अधिकांश विश्वविद्यालयों के शोध-अनुभागों के अनुसार Viva कराने की कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं है। इसके साथ ही मूल्यांकन के लिए थीसिस भेजने, चयनित विषय विशेषज्ञों द्वारा मूल्यांकन रिपोर्ट देने एवं यथासमय रिपोर्ट न आने पर स्मरण-पत्र भेजने की भी कोई समय-सीमा नहीं है।

भारत में सेमिनार/कॉन्फरेंस/वर्कशॉप लगभग हर महाविद्यालय में/विश्वविद्यालय में/शोध केन्द्र में बराबर होते रहते हैं। इन सबके पीछे उद्देश्य हैं-

१. नयी पीढ़ी के शोधार्थी देश की सामाजिक/सांस्कृतिक/मनोवैज्ञानिक/प्रौद्योगिक/राजनीतिक आवश्यकताओं को समझें;

२. उनका वार्तालाप देश के वरिष्ठ बुद्धिजीवियों/वैज्ञानिकों/राजनेताओं/मनीषियों/टेक्नोक्रेट/शिक्षकों के साथ हो;

३. फिर हम स्वप्नदर्शी युवाओं को चिह्नित करें;

४. अन्त में हम उनको उचित मार्गदर्शन के साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करें।

ऐसा दुर्भाग्यवश बहुत ही कम हो रहा है। क्या सेमिनार आदि के फालोअप को लेने में हम गम्भीर हो सकते हैं? उच्च शिक्षा के तन्त्र इन्फ्रास्ट्रक्चर को हमें पारदर्शी बनाना होगा-उपस्थिति/समय सारिणी/अनुशासन/शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए शैक्षिक समिति। वित्त सम्बन्धी कार्यों के लिए वित्तीय समिति। संस्थान का समाज/कारखाने/उद्योग/बाजार/शिल्प के साथ ही पूर्व विद्यार्थियों के साथ इण्टरेक्शन के लिए समग्र समिति के गठन में शिक्षकों के साथ विद्यार्थी, अभिभावक, स्वयं सेवा संगठन, वैज्ञानिक, उद्योगपति, कलाकार, शिल्पकारों की भी भागीदारी हो। इससे पारदर्शिता के क्षेत्र में हमारे कदम आगे बढ़ेंगे।

जब हम अपनी कक्षा में समय से पहुँचते हैं, पूरी तैयारी के साथ अपनी विषय-वस्तु को अपने विद्यार्थियों के बीच रखते हैं; अपने विषय को रुचिकर बनाने एवं उसे अप-टू-डेट करने के लिए विषय की पत्रिकाओं के सम्पर्क में रहते हैं; कक्षा के बाहर भी अपने विद्यार्थियों के साथ बातचीत करते हैं; उन्हें उनके नाम से याद रखते हैं; तो जाने-अनजाने में हम न केवल अपने पूर्व शिक्षकों, समर्पित शिक्षकों के प्रति श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हैं, बल्कि अपने विद्यार्थियों को देश-विदेश में प्रतिभा निवेश (ब्रेन इन्वेस्टमेन्ट) के लिए तैयार होने में मददगार होते हैं।

जनवरी माह में एक दिन मैं महाविद्यालय च गया था। प्राचार्य 'प' मुझे मेरे विषय की प्रयोगशाला में स्वयं चल कर छोड़ आए। करीब सवा घण्टे बाद प्राचार्य से मिलने गया तो सुखद आश्चर्य से मैंने देखा प्राचार्य नंगे पाँव, पैण्ट को घुटने तक चढ़ाए, कुछ शिक्षकों एवं कुछ विद्यार्थियों के साथ विद्यार्थियों के बाथरूम के फर्श/टाइल पर पोछा लगा रहे थे।

इसी प्राचार्य के नेतृत्व में महाविद्यालय की प्रवेश समिति, अनुशासन समिति, कार्यक्रम समिति आदि में शिक्षकों के साथ ही विद्यार्थियों की भागीदारी भी सुनिश्चित की गयी है। छात्र परिषद का विधिवत चुनाव होता है बिना किसी खर्चीले प्रचार के। फिर चुने हुए विद्यार्थी प्रतिनिधि शिक्षकों के साथ कदम से कदम मिलाकर दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का निदान ढूँढ़ते हैं। आपसी सहमति से निर्णय लेते हैं, उन्हें लागू करते हैं। कहीं विफलता मिलने पर उससे सबक लेते हैं। उच्च शिक्षा के इन अनूठे प्रयोगों को नमन।

वर्तमान उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम एवं शिक्षण में मानवीय जीवन-मूल्यों को साथ लेकर चलने से ही हम पूर्ण सामाजिक स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। आज उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की कालोनी/विहार/समूह में ही टूटते परिवार, आत्महत्या, संवादहीनता, संवेदनहीनता, मादक-द्रव्य सेवन जैसी चीजें दिखाई देती हैं।

स्नातक स्तर पर भौतिक विज्ञान में पानी की गुप्त-ऊष्मा निकालने का प्रयोग हो या रसायन विज्ञान में तीव्र अम्ल - तीव्र क्षार की उदासीनीकरण की ऊष्मा निकालने का प्रयोग हो, सितम्बर में प्राप्त निरीक्षण, जनवरी में प्राप्त निरीक्षणों से भिन्न होते हैं। इन वैज्ञानिक प्रयोगों में-सटीक निरीक्षण, सही रेकार्डिंग, सही रिपोर्टिंग हमारे विद्यार्थियों को मानवीय गुणों से भरपूर उच्च शिक्षित बनाती है, जबकि निर्धारित परिणाम का लक्ष्य मात्र उच्च शिक्षित बनाना है। कोई भी वस्तु स्वतंत्र रूप से कुछ भी नहीं है, उसका महत्त्व/उसका व्यक्तित्व/उसकी प्रकृति म्युचुअल डिपेन्डेन्स पर है। (T.R.V. Murti, the central philosophy of Buddhism Allen & Uniwin, Londen, 1955 p.138)

भौतिक/रसायन विज्ञान में क्वांटम सिद्धान्त पढ़ाते समय हम विज्ञान एवं अध्यात्म के बीच उभरते

सत्य को विद्यार्थियों के सामने रखें, उच्च बीजगणित में मानवता के आदर्श रखें (ग्वाला 'प' लीटर दूध लेकर चला उसने २० लीटर पानी मिलाया, फिर होटल में ३० लीटर दूध दिया। बचे दूध को पाँच घरों में दो लीटर प्रति घर दिया। यदि शेष दूध 'र' लीटर बचा, इस सवाल के स्थान पर- एक उद्योगपति ने 'प' रुपये का लाभ प्राप्त किया। उसने मूक-विकलांग विद्यालय को सत्ताइस हजार रुपये दिये। गाँव के स्वास्थ्य केन्द्र को तीस हजार रुपये दिये, अपने उद्योग के मजदूर-कर्मचारियों को बोनस के रूप में पच्चास हजार रुपये दिये। आयकर के रूप में ०१.३० लाख अदा किए। उसके बाद बचा लाभ 'र' लाख है...)

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में लगे हुए हम शिक्षक ज्ञान देते हैं। हम प्रयास करते हैं कि हमारे विद्यार्थी विषय-वस्तु को जानें, वे विद्वान बनें; यह विकास-यात्रा का सोपान है। विकसित भारत के लक्ष्य की दिशा में यह एक चरण (माइल-स्टोन) है। हर विषय में और हर विषय-वस्तु की पृष्ठभूमि में जीवन-मूल्य निहित होते हैं, शिक्षक की ट्रान्सेक्सनल एवं इवैल्यूएटिव प्रक्रिया में हमारे विद्यार्थी इसे भी प्राप्त करें। परीक्षा की दृष्टि से कोर्स को खत्म करने की तैयारी में, तेजी में, व्याकुलता में हम उद्देश्य, लक्ष्य को न भूलें।

जर्मनी में एक समय आया था जब कम्प्यूटर-शिक्षा एवं कम्प्यूटर के माध्यम से शिक्षा का प्रचलन हो गया था। एक रोबोट कक्षा में इतिहास की सी.डी. के साथ जाता था, दूसरी कक्षा में वही रोबोट मनोविज्ञान की सी.डी. के साथ तो तीसरी कक्षा में रसायनशास्त्र की.....। कुछ वर्षों बाद, देश में बढ़ती हिंसा, अपराध, मादक-द्रव्यों की बढ़ती खपत का शिक्षा-शास्त्रियों ने अध्ययन/विश्लेषण किया। इस परिणाम को हम अपने भारतीय परिवेश में रखें तो पाते हैं- कम्प्यूटर शिक्षण शिक्षा का एक भाग तो है, सम्पूर्ण शिक्षा नहीं। शिक्षक-शिक्षार्थी के वार्तालाप में मस्तिष्क का ही नहीं, हृदय का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उच्च शिक्षा में मात्र तथ्य/सूचना ही न हो, प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं/संस्कारों के साथ समन्वय भी हो।

हम शिक्षक कक्षा में पढ़ाते समय, अपने विद्यार्थियों के लिए 'हीरो'(नायक) होते हैं। हमारे तौर-तरीके, हाव-भाव, विषय पर पकड़ नयी पीढ़ी को मानवोचित विद्वता प्रदान करें, वर्तमान में छाये अंधकार को कोसने के बजाय दीप जलाने का हौसला दें, परम पिता परमेश्वर हमें यह शक्ति/विवेक दें।

डॉ० नीरज कुमार सिंह-

शिक्षक, विद्यालय तथा शिक्षा-पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक (Dynamic) शक्ति है। यह सत्य है कि विद्यालय-भवन, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ, निर्देशन-कार्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें आदि सभी वस्तुएँ शैक्षिक कार्यक्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं; परन्तु जब तक उनमें अच्छे शिक्षकों द्वारा जीवन शक्ति प्रदान नहीं की जायेगी, तब तक वे निरर्थक रहेंगी। शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थियों पर अपना प्रभाव डालता है। शिक्षक ही राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर विश्व-व्यवस्था तथा मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर ही निर्भर है।

हुमायूँ कबीर ने कहा है कि ''शिक्षक राष्ट्र के भाग्य-निर्णायक हैं।''

डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में- "The teacher's place is society is of vital importance. He acts as the pivot for the transmission of intellectual traditions and technical skills from generation to generation, and helps to keep the lamp of civilization burning."

आदर्श शिक्षक को मनुष्यों का निर्माता, राष्ट्र-निर्माता, शिक्षा पद्धति की आधारशिला, समाज को गति प्रदान करने वाला इत्यादि सब कुछ माना गया है। साधारणतः ऐसे शिक्षक में बालकों को समझाने की शक्ति, उनके साथ उचित रूप से कार्य करने की क्षमता, शिक्षण योग्यता, कार्य करने की इच्छा शक्ति और सहकारिता इत्यादि गुणों की अपेक्षा की जाती है। ऐसे गुण सामान्यतः न तो प्रत्येक शिक्षक में मिलते हैं और न शिक्षण प्रत्येक व्यक्ति का कार्य ही है। वस्तुतः यह कार्य वह व्यक्ति कर सकता है, जिसमें कुछ विशिष्ट शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक गुण हों। शिक्षण जगत् की एक मानसी प्रक्रिया है, जिसमें मस्तिष्क का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस सम्बन्ध की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता बहुत कुछ शिक्षक के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। इस सम्बन्ध में समय-समय पर अध्ययन किये गये हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में डॉ० एफ.एल. क्लैप ने १९१३ में एक अध्ययन किया जिसके आधार पर उन्होंने अच्छे शिक्षक के व्यक्तित्व के निम्नलिखित दस गुणों का उल्लेख किया है-

१. सम्बोधन २. वैयक्तिक आकृति ३. आशावादिता ४. संयम ५. उत्साह ६. मानसिकता निष्पक्षता ७. शुभचिन्तन ८. सहानुभूति ९. जीवन शक्ति १०. विद्वता।

अमेरीका में बागले तथा कीटा के अध्ययन के फलस्वरूप उपर्युक्त में चातुर्य, नेतृत्व की क्षमता तथा अच्छा स्तर नामक गुण और जोड़े गये।

शिक्षकों का छात्र एवं समाज के प्रति उत्तरदायित्व अत्यधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षकों को विद्यालयों में ऐसा सुन्दर वातावरण निर्मित करना होगा जिसमें बालकों की छिपी प्रतिभाएँ प्रस्फुटित हो सके। यह वातावरण छात्रों को ऐसा भाये कि वे विद्यालय जाने में खुशी का अनुभव करें। अतः शिक्षक को आज की परिस्थितियों में उत्तरदायी बनाने के लिए जवाबदेही (Accountability) तय की जानी चाहिए। वह पिछड़े छात्रों की कठिनाई एवं कमजोरी का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें उपयुक्त स्तर पर लाने के लिए उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) प्रदान करें। शिक्षकों का मूल्यांकन उनके व्यापक कार्य निष्पादन एवं उनकी सतत शिक्षा तथा सुधार के आधार पर यिका जाना चाहिए।

सार रूप में हम यह कह सकते हैं कि शिक्षक का व्यक्तित्व तीखे नाक-नक्श वाला या ताराशा हुआ होना चाहिए। उसके अन्दर निम्नलिखित गुण विद्यमान होने चाहिए-

१. वह वक्त का पाबन्द होना चाहिए; अर्थात् वह समयनिष्ठ होना चाहिए।
२. वह अपने प्रत्येक कार्य में निष्पक्ष होना चाहिए।
३. वह सभी के प्रति सहृदय होना चाहिए।
४. वह छात्रों की सम्मतियों का आदर करने वाला होना चाहिए और उनको स्वतन्त्र रूप से विचार-विमर्श करने के लिए आमन्त्रित करे।
५. वह सम्मान प्राप्त करने के योग्य होना चाहिए।
६. वह अपने व्यवहार तथा भाषण में विवेकी होना चाहिए।
७. वह दयालु तथा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए।
८. वह प्रत्येक स्थिति में ईमानदार होना चाहिए।
९. वह बाल अध्ययन, अपने विषय एवं शिक्षण शास्त्र इत्यादि में उत्साही होना चाहिए।
१०. उसको स्वयं को जानना चाहिए।

शुभ्रा श्रीवास्तव-

शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया का एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण अंग होता है। बालक के सर्वांगीण विकास में उसकी प्रभावी भूमिका होती है। वह विद्यादान करने वाला तथा विद्यार्थियों में सुसंस्कार डालने वाला होता है। वह अपने सद्प्रयासों द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करके उसे सफल नागरिक बनाकर उसके कल्याण के साथ-साथ समाज और राष्ट्र के विकास में अपना सहयोग देता है। कहा गया है- **''अध्यापक है युग निर्माता, छात्र राष्ट्र के भाग्य विधाता।''**

गुरुओं के त्याग, तपस्या से ही सम्पूर्ण विश्व में महान विभूतियाँ तैयार हुईं, जिन्होंने विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता को सिद्ध किया है। प्राचीन भारत में गुरु को देव, ब्रह्मस्वरूप, आदर्शवादी प्रतिमा के रूप में वन्दित करते हुए कहा गया है-

''गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परम ब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।।''

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में गुरु को मृत्यु, वरुण, सोम, औषधि और पय कहा गया है; जिसके अनुसार एक गुरु या शिक्षक को 'मृत्यु' होना चाहिए अर्थात् उसके अन्दर मार सकने की सामर्थ्य होनी चाहिए; उसमें विद्यार्थियों के कुसंस्कारों, दूषित शब्दोच्चारण, मिथ्या ज्ञान, कुआदत को दूर करने की, मारने की क्षमता होनी चाहिए। इसके साथ ही उसे बाल मनोविज्ञानवेत्ता के साथ एक अच्छा कलाकार होना चाहिए। जिस प्रकार एक कुम्हार घड़े को बनाते समय अन्दर हाथ लगाकर बाहर-बाहर चोट मारता है और पूर्ण घड़ा बन कर तैयार हो जाता है, उसी प्रकार शिक्षक को भी कुम्हार की भाँति अपने कार्य को करना चाहिए-

''गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है गणि-गणि मारे चोट।
अन्तर्हाथ निहार दे बाहर-बाहर चोट।''

शिक्षक को 'वरुण' के समान सचेत रहकर, छात्र की प्रत्येक गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए, उसमें अच्छे गुणों को निहित करते हुए, बुराई से बचाते रहना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द का मानना है, ''सच्चा शिक्षक वह है जो शिक्षार्थी के स्तर पर नीचे जाकर उसकी आत्मा में अपनी आत्मा भर देता है, उसके मन को जान लेता है।''

'सोम' की भाँति शिक्षक के व्यक्तित्व में आकर्षण होना चाहिए जिससे छात्र उसके सान्निध्य में शीतलता, आह्लाद का अनुभव करें और वह उसे बुद्धि मनीषा जैसे गुणों से परिपूर्ण करे। जिस प्रकार औषधि शारीरिक तथा मानसिक रोगों को दूर करती है, उसी प्रकार शिक्षक को भी 'औषधि' की भाँति छात्रों को शारीरिक और मानसिक रोगों से दूर रखकर उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा नैतिक विकास करना चाहिए। शिक्षक को 'पय' के रूप में अर्थात् जल के समान बनकर जीवन प्रदान करना चाहिए। दूध बनकर उसे ज्ञान, मनोबल तथा चरित्रबल से संपुष्ट बनाये रखना चाहिए। इसके साथ ही 'वाचस्पति' होना नितान्त आवश्यक है; अर्थात् वाक्पटु, स्पष्टतावादी, प्रभावशाली, विषयज्ञान के साथ संसाधनयुक्त हो एवं शिष्य के समक्ष ईमानदार रहे। शिक्षक का जीवन और चरित्र आदर्श होना चाहिए। छात्र उसके जीवन से अधिक सीखते हैं बजाय उसके भाषणों से। गाँधीजी ने लिखा भी है- ''मुझे लगा कि लड़के पुस्तकों एवं व्याख्यानों की अपेक्षा शिक्षकों के जीवन से अधिक सीखते हैं। उस शिक्षक को धिक्कार है जो मुँह से एक बात करता है और जीवन में भिन्न प्रकार के व्यवहार करता है।''

शिष्य को गुरु के संरक्षण में उसी प्रकार रहना चाहिए जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु माता के संरक्षण में रहता है। वर्तमान समय में तीन प्रकार के मानसिक स्तर कहे गये हैं, वे ही तीन आयाम वेदों में कहे गये हैं- आध्यात्मिक/मानसिक, भावात्मक/उपासात्मक, कर्मकाण्ड/मनोगत्यात्मक; शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर इन्हीं आयामों का ज्ञान कराया जाता है। इस प्रकार जो गुरु शिष्यों की अज्ञानता को दूर करता है, वह गुरु-शिष्य सम्बन्ध माता एवं पुत्र का होता है और इसी आधार पर शिष्य गुरु के लिए कहता है- ''पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा इह'' अर्थात् आप पुनः-पुनः हमारे मध्य आयें। आज मानवीय विचारधारा

में परिवर्तन के बावजूद उसका अपना महत्त्व है और वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में उसका दायित्व बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है जिसे आज एक मित्र, पथप्रदर्शक, सहायक, मार्गनिर्देशक के रूप में स्वीकृत किया जाता है। वह शिक्षार्थी में सीखने की जिज्ञासा उत्पन्न कर, उसका मार्गदर्शन करता है और सीखे हुए ज्ञान अथवा कौशल को स्थायित्व प्रदान करता है। उत्तम शिक्षकों के अभाव में विद्यालय अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं।

एक अंग्रेजी कहावत है- "A bad instrument in the hands of a good artist tunes well." यदि देश के शिक्षक अच्छे हैं तो उसकी दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली भी प्रभावशाली हो सकती है। गुरु के गुरुतर उत्तरदायित्व का निर्वहन प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता है। इसके लिए एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि एक शिक्षक के रूप में वह कैसा व्यक्ति हो? उसका व्यक्तित्व कैसा हो? कैसा आचरण व व्यवहार प्रदर्शित करे? अपनी भूमिका को कैसे क्रियान्वित करे? कैसे अपने सहयोगियों, प्रशासनिक अधिकारी, अभिभावकों तथा समाज के लोगों से व्यवहार करे? उसका समाज की संस्कृति, देश के संविधान, पर्यावरण एवं विश्व के प्रति क्या उत्तरदायित्व एवं व्यवहार हो ये सभी प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं? इनका सम्बन्ध शिक्षकों की आचार संहिता से होता है जिसमें शिक्षक को मात्र शिक्षक के रूप में नहीं वरन् उसके व्यक्तित्व और कार्य के विविध पक्षों का निहतीकरण है। उसके विशिष्ट व्यक्तित्व के अन्तर्गत स्वस्थ, चतुर, बुद्धिमान, उत्साही, ऊर्जावान, प्रसन्नचित्त, आत्मविश्वासी, मधुरकण्ठ, व्यवहारकुशल, विद्यार्थी से प्रेम, सहानुभूति, निष्पक्ष व्यवहार, आशावान, स्वाध्यायी, अध्ययनशील प्रवृत्ति, शिष्ट, विनम्र, संयम, मनन, चिन्तन, सम्यक दृष्टिकोण, उदारता, त्यागी, चरित्रवान, विषय विशेषज्ञ, शिक्षण कला में निपुण, संसाधनयुक्त, नवीन ज्ञान के सम्यक विकास हेतु तत्पर, सकारात्मक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण, संवेदनशील, प्रगतिशील, परिस्थिति अनुरूप कार्य करने में सक्षम, मानवीय मूल्यों का प्रतिस्थापक, मितव्ययी, कर्तव्यनिष्ठ, श्रमनिष्ठ, व्यसनमुक्त, सत्यान्वेषी, ईमानदार, आत्मसम्मानी, कल्पनाशील, सृजनात्मक प्रवृत्ति, सहनशील, आत्मसंतोषी, निडर, अनुकूलन की प्रवृत्ति तथा देश प्रेम की भावना जैसे गुणों के साथ-साथ आत्ममूल्यांकन करने में सक्षम होना चाहिए। इसके साथ ही व्यावहारिक रूप में उसे निम्नांकित प्रकार्यों के निर्वहनकर्ता के रूप में स्वयं को सुस्थापित करना होगा-

शिक्षक →
- एक मानव के रूप में
- एक नागरिक के रूप में
- एक प्रभावी सामाजिक-अभिकर्ता के रूप में
- विद्यार्थियों के नेता एवं जीवन निर्माता के रूप में
- नैतिकता के अभिकर्ता रूप में
- सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन के अभिकर्ता रूप में
- राष्ट्रीय एकीकरण तथा एकता के अभिकर्ता रूप में
- मानव अधिकारों का सम्मान करने वाले और उनकी रक्षा करने वाले के रूप में
- समुदाय के प्रभावी नेतृत्वकर्ता के रूप में
- एक व्यावसायिक अभिकर्ता के रूप में
- प्रगतिशील विचारक के रूप में।

इस प्रकार जिस तरह से एक चिकित्सक को उसके व्यवसाय की आचार संहिता का पालन करना न केवल वांछनीय एवं अनिवार्य होता है, ठीक उसी प्रकार से शिक्षक को उसके व्यवसाय के प्रति निष्ठावान होकर, समाज सेवा को, आदर्श को अपने समक्ष रखकर अपने दायित्वों का भली-भाँति निर्वहन करना होगा। महान वैज्ञानिक आइंसटाइन के अनुसार- ''एक शिक्षक की सर्वोच्च कला होती है कि वह सृजनात्मक अभिव्यक्ति और ज्ञान को जगाये।''

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अपनी विशेषीकृत भूमिका को ध्यान में रखकर ज्ञान की विशालतम राशि के बीच में मध्यस्थ रोल निभाना होगा जिसमें ज्ञान ग्रहण करने की अपेक्षा ज्ञान का चुनाव करना और उसका उपयोग करना होगा। उसे नवाचारी संगठनकर्ता के रूप में, जनसम्पर्क कार्यकर्ता के रूप में, सामाजिक अभिकर्ता की भाँति परामर्शदाता, नेतृत्वकर्ता, सलाहकार, परिवर्तनकारी अभिकर्ता की भाँति पाठ्यक्रमेतर क्रियाकलाप के संगठनकर्ता के रूप में अन्य अनौपचारिक कार्यों को भी उत्साह एवं विवेक से करना होगा।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, ''शिक्षकों को अपना कार्य धन कमाने का अन्तिम साधन नहीं मानना चाहिए बल्कि उसे एक ऐसा मार्ग अपनाना चाहिए जिससे वे महत्त्वपूर्ण सामाजिक सेवा कर रहे हैं एवं स्वयं सन्तुष्टि एवं स्वयं अभिव्यक्ति को प्राप्त कर रहे हैं।

आज के इस भौतिकवादी युग में आध्यात्मिक, नैतिक एवं मानवीय मूल्य छिन्न-भिन्न हो गये हैं। समाज में भ्रष्टाचार, अन्याय, अनैतिकता, अपराध, बनावटीपन, लोलुपता, अन्धानुकरण, ऐन्द्रिय सुख, दलबन्दी, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, आतंकवाद, संवेदनहीनता जैसी प्रवृत्तियों में वृद्धि के कारण वह विनाश की ओर अग्रसर है जिसका प्रभाव शिक्षकों पर पड़ना स्वाभाविक है, जिसके फलस्वरूप वे मात्र वेतनभोगी कर्मचारी बनकर रह गये हैं और अपनी विद्यादानी और राष्ट्रनिर्मात्री भूमिका को भूलने लगे हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि वे स्वयं को पहचानें। वे ही सच्चे अर्थों में संस्कृति के पोषक, मार्गदर्शक, भविष्यनिर्माता, शिक्षा के रक्षक, राष्ट्र एवं भाग्यनिर्माता हैं जिनसे समाज को बहुत सी अपेक्षाएँ हैं। उन्हें अपनी स्वयं की स्वार्थपरता को त्याग कर आदर्श स्वरूप, आचरण एवं व्यवहार को प्रस्तुत करना होगा। ऐसे समाज को निर्मित करना होगा जिसमें घृणा के स्थान पर सहयोग, अन्याय के स्थान पर न्याय, बेईमानी, भ्रष्टाचार के स्थान पर ईमानदारी, संवेदनशून्यता के स्थान पर संवेदनशीलता, झूठ-फरेब के स्थान पर सत्य एवं विश्वास निहित हो। उन्हें एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना करनी होगी जिसमें मानवीय गरिमा, समानता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, भावात्मक एकता तथा राष्ट्रीय अखण्डता को महत्त्वपूर्ण स्थान एवं सम्मान प्राप्त हो। जिसे मूर्त रूप देने के लिए शिक्षक को सामाजिक चेतना लाते हुए अहिंसात्मक, सांस्कृतिक क्रान्तिकर्ता के रूप में कार्य करते हुए स्वयं को राष्ट्र के प्रति समर्पित करके 'गुरुता' के व्यापक अर्थ को समझ कर तदनुरूप आचरण करना ही होगा।

"The function of teacher is of vital importance. He must be a committed man, committed to faith in the future of men, in the future of humanity, in the future of his country and the world."

सन्दर्भ ग्रन्थ

१.शर्मा, डी.एल. : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, आर.एल. बुक डिपो, मेरठ।
२.सक्सेना, सरोज : विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
३.बाजपेयी, एल.बी. : शिक्षा में नवाचार एवं तकनीकी, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।
४.सुखिया, एस.पी. : विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
५.पाण्डेय, डॉ.रामशकल : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
६.सिंह, डॉ० सत्य प्रकाश : भारतीय शिक्षा के आयाम, सुविज्ञ प्रकाशन, देवरिया।
७.लाल, रमन बिहारी : शिक्षण कला, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
८.भार्गव उर्मिला एवं भार्गव ऊषा : शिक्षण सिद्धान्त एवं शिक्षण कला, राखी प्रकाशन, आगरा।

डॉ. भारती सिंह

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य हारकः।
उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः।। (तन्त्रसार)

अर्थात् 'ग' अक्षर सिद्धिदायक कहा गया है और 'र' पाप का हरण करने वाला है। 'उ' अव्यक्त विष्णु हैं। इस प्रकार इन तीन अक्षरों से बना यह शब्द परमगुरु का वाचक है। धर्म, ज्ञान और भक्ति का उपदेश करने के कारण वह गुरु कहलाता है। जैसे ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्गुरु से सम्बन्ध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसार-सागर से पार उतारने वाला है और उसका दिया हुआ ज्ञान नौका के समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसे नौका और नाविक दोनों की ही अपेक्षा नहीं रहती।

गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और साक्षात् परब्रह्म तक बताया गया है। प्राचीन युग में गुरु बनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही मिला था, जो अन्य विद्याओं के साथ-साथ शस्त्र विद्या, युद्ध नीति तथा अन्य विषय भी पढ़ाते थे। यदि ब्राह्मण गुरु न मिले तो क्षत्रिय गुरु से भी विद्या प्राप्त की जा सकती थी। आगे चलकर इन गुरुओं के दो भेद हो गये। एक शिक्षा-गुरु और दूसरे दीक्षा-गुरु। जो विद्वान केवल विभिन्न शास्त्र मात्र पढ़ाता था, वह शिक्षा-गुरु कहलाता था और जो उपनयन के पश्चात् छात्र को अपने साथ रखकर उसे आचार-विचार भी सिखाता था, उसे दीक्षा-गुरु कहते थे।

स्मृतियों में चार प्रकार के शिक्षक माने गये हैं- कुलपति, आचार्य, उपाध्याय और गुरु। जो ब्रह्मर्षि विद्वान दस सहस्र मुनियों (विद्या का मनन करने वाले ब्रह्मचारियों) को अन्न-वस्त्र आदि देकर पढ़ाता था, वह **कुलपति** कहलाता था। जो अपने छात्रों को कल्प (यज्ञ करने की विधि) और रहस्य (उपनिषद्) के साथ वेद पढ़ाता था, वह **आचार्य** कहलाता था। जो विद्वान मन्त्र और वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण और छन्द) पढ़ाता था, वह **उपाध्याय** कहलाता था और जो विद्वान अपने छात्रों को भोजन देकर वेद-वेदाङ्ग पढ़ाता था वह **गुरु** कहलाता था। प्राचीन काल में यह विश्वास था कि विद्या दान से बढ़कर कोई दान नहीं था, क्योंकि विद्या से ही या ज्ञान से ही जीव की मुक्ति हो जाती है। इसीलिए अनेक विद्वान सब प्रकार की तृष्णा को त्यागकर लोक कल्याण की कामना से छात्रों को विद्या-दान करते ही रहते थे।

गुरु का कार्य केवल पढ़ाना ही नहीं था। उनका यह भी धर्म था कि वे छात्रों के आचरण की भी रक्षा और देख-रेख करें; उनमें सदाचार की भावना भरें; उनकी बौद्धिक योग्यता में संवर्धन करें; उनके कौशल और उनकी प्रतिभा की सराहना करके उनकी सर्वांगीण अभिवृद्धि में सहायता करें; वात्सल्य भाव से उनका पोषण करें; उनके भोजन, वस्त्र की समुचित व्यवस्था करें; उनके रुग्ण हो जाने पर उनकी सेवा करें; जिस समय भी वे विद्या सीखने या शंका का समाधान चाहें गुरु उसी समय उनकी शंका का समाधान करें, उन्हें पुत्र के समान मानें और यदि कोई शिष्य विद्या-बुद्धि-कौशल में अपने से बढ़ जाय तो इसे अपना गौरव समझें।

शिक्षा के लिए ऋषि-मुनियों ने गुरुकुल की प्रणाली का आविष्कार किया था। ये गुरुकुल ग्रामों और नगरों से दूर प्रकृति के शान्त वातावरण में होते थे। नैसर्गिक जलवायु और सात्त्विक आहार-विहार के परिवेश में प्राप्त शिक्षा आनन्दमयी ही होती थी, किन्तु वहाँ विलासमय जीवन की नहीं, अपितु तपोमयी चर्या की मान्यता थी। आर्थिक वैषम्य अथवा जाति-वर्ण का पार्थक्य गुरुकुल में छात्रों के प्रवेश में बाधक नहीं था। श्रीकृष्ण और सुदामा तथा द्रोण और द्रुपद का जीवन उदाहरण स्वरूप है।

प्राचीन भारत में शिक्षा की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था परिषद् थी। ये परिषदें अत्यन्त गणमान्य विद्वानों की समितियाँ थीं, जो समय-समय पर सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर विचार करके देश, काल, नीति, धर्म तथा औचित्य के अनुसार व्यवस्था या निर्णय दिया करती थीं। इनकी दी हुई व्यवस्था राजा और प्रजा दोनों को समान रूप से मान्य होती थी। इन परिषदों के सभी सदस्य धुरंधर विद्वान, नीतिज्ञ, विवेकशील, निष्पक्ष महापुरुष ही होते थे। इन विद्वानों की विद्वत्ता, आत्मत्याग और सुशीलता से आकृष्ट होकर अनेक विद्याप्रेमी और ज्ञान-पिपासु छात्र तथा विद्वान दूर-दूर से उनसे ज्ञान प्राप्त करने या शंकाओं का समाधान कराने आते थे। धीरे-धीरे इन्हीं परिषदों ने विश्वविद्यालयों का रूप ग्रहण कर लिया।

शिष्य भी गुरु को पिता और देवता मानकर उनमें अखण्ड श्रद्धा रखते थे। गुरुकुल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारी सब समान रूप से रहते थे। गुरु के एक वाक्य को शिष्य अपने लिए अमृत वाक्य समझता था और उनके आदेश के पालन को अपना अहोभाग्य मानता था। वह सब प्रकार से गुरु की कृपा तथा आशीर्वाद प्राप्त करने और उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था। यही कारण था कि उस युग के सभी शिष्य एक से बढ़कर एक सच्चरित्र, मेधावी, विद्वान और तेजस्वी होते थे।

आर्य सभ्यता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है- उसके द्वारा इहलोक में सर्वांगीण अभ्युदय और परलोक में परम निःश्रेयस-मोक्ष की प्राप्ति। ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमें अज्ञान के बन्धन से विमुक्त कर दे-'सा विद्याया विमुक्तये।' भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्' कहकर इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है। इसी उद्देश्य से आर्य जाति के पवित्र हृदय और समदर्शी त्रिकालज्ञ ऋषियों ने चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) की सुन्दर व्यवस्था की थी। ब्रह्मचर्य के कठोर नियमों का पालन करता हुआ ब्रह्मचारी विद्यार्थी जब संयम की व्यावहारिक शिक्षा के साथ-साथ लौकिक और पारलौकिक कल्याणकारी विद्याओं को पढ़कर सब प्रकार शरीर, मन और वाणी से स्वस्थ एवं संयमी होकर गुरुकुल से निकलता था, तब वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर क्रमशः जीवन को और भी संयममय, सेवामय और त्यागमय बनाता हुआ अन्त में सर्वत्याग करके परमात्मा के स्वरूप में निमग्न हो जाता था। यही आर्य संस्कृति में हमारे आदर्श गुरुओं का स्वरूप था। जब तक देश में यह आश्रम-सम्मत शिक्षा-पद्धति प्रचलित थी तब तक आर्य संस्कृति सुरक्षित थी और सभी श्रेणी के लोग प्रायः सुखी थे। जब से अनेक प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में पड़कर मोहवश हमने अपनी इस आश्रम-सम्मत शिक्षा-पद्धति को ठुकराया, तभी से हमारी आदर्श आर्य-संस्कृति में विकार आने लगे। आज के समय में तो हमारी उस संस्कृति की सुदृढ़ नौका हमारे ही हाथों नष्ट-भ्रष्ट होकर डूबने जा रही है। ऐसा मतिभ्रम हुआ है कि विनाश के गहरे गर्त में गिरना ही आज हमारे उन्नयन का निदर्शन हो गया है। इसका दोष केवल आज की युवा पीढ़ी या सरकार की शिक्षा नीति को ही नहीं दिया जाना चाहिए इसके लिए हम शिक्षक ही जिम्मेदार हैं, क्योंकि हमने भी अपने आदर्शों, सुविचारों को बहुत हद तक त्याग दिया है जिससे आज की युवा पीढ़ी मार्ग से भ्रमित होकर गलत रास्ते पर चली गयी है। हम यह भूल गये हैं कि हमें सरकार से जो मोटी रकम वेतन के तौर पर मिलती है वह इसलिए नहीं कि हम कार, घर और अपनी सुविधाभोगी चीजों की ओर आकृष्ट हों; वह वेतन हमें आज की युवा पीढ़ी या बच्चों को पढ़ाकर देशहित में उन्हें ले जाने के लिए दी जाती है। शिक्षक का यह धर्म है कि वह छात्रों में नैतिकता, सदाचार, सद्व्यवहार और सच्चरित्रता का भाव पैदा कर सके; छात्रों में राष्ट्र के लिए प्रेम और अपनी संस्कृति का सम्मान करने का भाव पैदा कर सके। बुनियादी शिक्षा-पद्धति सफलतापूर्वक लागू करने के किए प्रतिभाशाली कुशल चरित्रवान और आस्थावान शिक्षक चाहिए। बुनियादी शिक्षा को असली रूप देने के लिए 'आचार्य' विनोबा

भावे ने 'आचार्यकुल' के गठन पर बल दिया है। 'आचार्यकुल' अर्थात् ऐसे शिक्षकों, आचार्यों का परिवार जो आचार और विचार दोनों दृष्टियों से समाज के लिए अनुकरणीय हो। शिक्षक का कार्य केवल छात्रों को पास कराने तक ही सीमित नहीं है। किताबी ज्ञान देना ही उनका कर्तव्य नहीं है अपितु छात्रों का सर्वांगीण विकास करना उनका कर्तव्य है। मानव का पूर्ण विकास ही तो शिक्षा का मूल उद्देश्य है। वेद की दृष्टि में विश्व का कोई भी असंस्कृत पदार्थ किसी भी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होता; अतः उसे कार्यान्तर के उपयोग के लिए संस्कृत बनाना अनिवार्य है। कच्चा घड़ा असंस्कृत होने पर जल-धारण-कार्य के लिए योग्य नहीं होता; अतः उसे अग्नि में संस्कृत बनाया जाता है। ताप संस्कार से उसमें जल ध ारण करने की योग्यता आ जाती है। इसी तरह छात्र भी शिक्षक के पास आता है और शिक्षक उसे विद्या और ज्ञान के द्वारा तपा कर समाज में नेक, श्रेष्ठ और चरित्रवान बनाता है।

अतः सही अर्थों में आदर्श शिक्षक वह है जो मानव को संस्कृत कर सके, जिसमें अर्थ-काम की तरह धर्म-मोक्ष के शिक्षण की भी पूर्ण व्यवस्था हो। जिस शिक्षा ने अपने यहाँ केवल अर्थ-काम को रखकर धर्म-मोक्ष को निकाल दिया हो वह शिक्षा कदापि मानव के चारों पर्वों में से किसी को भी विकसित नहीं कर सकती; अपितु उन्हें अधिक दोषपूर्ण बना देती है। ऐसी शिक्षा को शिक्षित मानव वेदान्त-तीर्थ बनकर भी विषयी ही रहते हैं, योगाचार्य होकर भी साधनशून्य रहते हैं, विदुरनीति आदि सीखकर भी नीतिभ्रष्ट रहते हैं और धर्मशास्त्र पढ़कर भी धृतिभ्रष्ट होते हैं। अतः शिक्षा में अर्थ-काम के साथ-साथ धर्म एवं मोक्ष का भी शिक्षण होना परम आवश्यक है।

भारतवर्ष तत्त्वज्ञान में समग्र विश्व के लिए गुरुस्थानीय था। वही भारतवर्ष आज अनाचार और दुराचार में सर्वोपरि हो रहा है। इसका मूल कारण शास्त्रानुकूल शिक्षा का अभाव ही है। हम जैसे हैं-या-बनेंगे, हमारे बच्चे भी उसी अनुरूप होंगे। अतः यदि देश की भावी प्रगति अभीष्ट है और राष्ट्र का चरित्र उज्ज्वल बनाना है तो आज के शिक्षण में सुधार लाने की नितान्त आवश्यकता है। इस क्षेत्र की त्रुटियों में सुधार करने के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक शिक्षाप्रेमी तथा देशभक्त का परम कर्तव्य है। जिस शिक्षा से मनुष्य का चारित्रिक उत्कर्ष न हो, वह भक्तिशील न बने, वह शिक्षा अधूरी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. ऋग्वेद
२. तैत्तरीयोपनिषद्
३. मुण्डकोपनिषद्
४. श्वेताश्वरोपनिषद
५. शतपथ ब्राह्मण
६. मुण्डकोपनिषद
७. महाभारत शान्तिपर्व
८. श्रीमद् भगवद्गीता
९. मनुस्मृति
१०. वावन्यपदीय, प्रथमकाण्ड
११. योगसूत्र
१२. तन्त्रसार
१३. महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था

डॉ० मुरली मनोहर तिवारी-

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करती है; उसके देवत्व का दर्शन कराती है; मानवीय मूल्यों की अनुभूति का उसे अवसर प्रदान करती है; और साथ ही स्वानुभूति का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा द्वारा ऐसे वातावरण की सर्जना अभीष्ट है जिससे व्यक्ति अपनी नैसर्गिक क्षमताओं के पूर्णतया विकास का मार्ग प्रशस्त कर सके।

शिक्षा वह विधा है जो अबोध और अगम्य हो उसका सहज बोध करावे। कुछ व्यावहारिक शिक्षा तो हम एक दूसरे के माध्यम से स्वतः ग्रहण कर सकते हैं लेकिन कुछ शिक्षा ऐसी होती है किसी योग्य गुरु (शिक्षक) के सान्निध्य में ही प्राप्त हो सकती है। शिक्षक वह होता है जो मनुष्यत्व से देवत्व की ओर ले जाता है।

अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय समाज में शिक्षा का विशेष महत्त्व रहा है। वैदिक काल में तो पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर समाज में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित करती थीं। ज्ञानपिपासु और जिज्ञासु ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर विविध विषयों का ज्ञान अर्जन करते थे। लेकिन प्राचीन भारतीय शिक्षा में जीवन के लौकिक एवं पारलौकिक पक्षों में पर्याप्त समन्वय था, क्योंकि तत्कालीन शिक्षा का उद्देश्य था लौकिक जीवन को सबल बनाते हुए पारलौकिक जीवन को भी प्रशस्त करना। किन्तु आधुनिक शिक्षा का भौतिकीकरण मानवता एवं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए घातक सिद्ध हो रहा है जिसका ज्वलन्त उदाहरण है-देश एवं विदेश में हो रहे नरसंहार, नित्य नये शस्त्रास्त्रों का अन्धाधुन्ध प्रयोग; लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ हमारी राष्ट्रीय अखण्डता एवं सांस्कृतिक एकता को शाश्वत और अक्षुण्ण बनाये रखे, जिसके बल पर शिक्षित युवा समाज वर्तमान एवं निकट भविष्य की चुनौतियों का दृढ़ता से सामना कर सके और देश में रचनात्मक नव परिवर्तन ला सके। लेकिन इसको करने का उत्तरदायित्व जहाँ समाज के प्रत्येक नागरिक का है वहीं सर्वाधिक उत्तरदायित्व शिक्षक का है जिसका स्थान ईश्वर से भी श्रेष्ठ माना गया है।

यह कहा गया है कि विचार और मन ही शारीरिक कार्यों का उद्गम होता है। एक सफल शिक्षक अपने छात्रों के विचारों और भावनाओं को अपने सुविचारित अध्यापन और प्रेरणात्मक कार्यों द्वारा सहज ही में राष्ट्रीय एकता की ओर उन्मुख कर सकता है। उसे इस तथ्य को हृदयंगम करके चलना होगा कि राष्ट्रीयता एक भावना है और जब यह भावना पूर्णतया विकसित हो जाती है तो वह मनुष्य के शारीरिक कार्यों को उसी प्रकार प्रेरित करने लगती है जिस प्रकार सारे शरीर में व्याप्त आत्मा जाग्रत होने पर मनुष्य का जीवन पथ आलोकमय कर देती है। आत्मतत्त्व के स्तर तक राष्ट्रीयता का विकास भगीरथ प्रयत्न की अपेक्षा रखता है। नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना का सफल विकास ही राष्ट्रीय एकता का जनक है। एक दृढ़ प्रतिज्ञ शिक्षक इस अभीष्ट की प्राप्ति तभी कर सकेगा जबकि उसे अपने प्रयत्नों पर अडिग विश्वास हो और ऐसे प्रयत्नों की आवश्यकता को अपने दैनिक कार्यकलाप में सतत अनुभव करता है। भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। इनके रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार में पर्याप्त अन्तर है साथ ही इनके बीच भाषाई एकता, साम्प्रदायिक भावना का भी अभाव है। ऐसी स्थिति में यहाँ के नागरिकों को राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षक शिक्षा काल में छात्रों के अन्दर राष्ट्रीयता का संस्कार डाले लेकिन यह प्रक्रिया शिक्षा के सभी स्तरों पर समान रूप से चलनी चाहिए। अभीष्ट की प्राप्ति तभी सम्भव है जब शिक्षक को सच्चे राष्ट्रवाद का न केवल पुस्तकीय ज्ञान हो बल्कि वह उसकी उपादेयता पर भी विश्वास

करता हो और तदनुसार आचरण भी करता हो। इसमें सन्देह नहीं कि सच्चा राष्ट्रवाद देश में फैले विविध धर्मों और सम्प्रदायों से ऊपर होगा और वह न तो अधार्मिक होगा और न ही अनैतिक।

प्रत्येक व्यक्ति अविच्छिन्न रूप से अपने राष्ट्र से जुड़ा है, ऐसी भावना एक आदर्श शिक्षक में तभी उत्पन्न हो सकती है जब उसके अन्दर अपने राष्ट्र अपने देश को जानने की प्रबलतम भावना होगी। प्रत्येक राष्ट्र में कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जो सबके होते हैं और जिन पर सभी को समान रूप से गर्व हो सकता है। एक शिक्षक को ऐसे समान तत्त्वों को छात्रों के सामने अपने शिक्षण में बार-बार उजागर करना होगा।

वह कौन सी बात है जो आज भी हमारी संस्कृति को कायम रखे है? एक जागरूक शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह इस देश के इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र और साहित्य का अध्यापन करते समय उन तत्त्वों का मनन और विश्लेषण कर अपनी सच्ची राष्ट्रीय अनुभूति को अपने छात्रों तक राष्ट्रीय एकता के हित में पहुँचाए। यदि शिक्षक स्वयं ऐसे तत्त्वों से पूर्णतया परिचित और अनुप्राणित नहीं होगा तो निश्चय ही छात्रों में नये दृष्टिकोण का उन्मेष नहीं होगा।

एक आदर्श शिक्षक का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह छात्र में भारतीय होने का गर्व पैदा करे; लेकिन यह तभी सम्भव है जब वह यह महसूस करे कि भारतीय मिट्टी से ही उसका तन और मन बना है तथा वह भारत माँ का ही सच्चा सपूत है। इस पावन धरती के विषय में कहा गया है कि यहाँ की धरती पर जन्म लेने के लिए देवता तक तरसते हैं। लेकिन इस पर गर्व करने के लिए एक ओर जहाँ हमारी सैन्धव सभ्यता और गौरवशाली आर्य या वैदिक सभ्यता से लेकर एलोरा-अजन्ता की गुफाओं की कला, अनेकानेक प्राचीन कालीन मन्दिर, धार्मिक सम्प्रदाय तथा वर्तमान भारत के नव निर्माण में आधुनिक तीर्थस्थल और ऐतिहासिक स्थल इस देश के नागरिक होने पर सहज रूप से गर्व की अनुभूति कराते हैं। भारतीय दर्शन देश की विविधता में एकरूपता का दर्शन कराते हैं। हिन्दू धर्म के जहाँ कुछ पंथ ब्रह्म की उपासना पर आधारित है वहीं दूसरी ओर उसी का अंग बौद्ध मत उसकी सत्ता से ही इन्कार करता है। पंथ की ऐसी मनोहारी विविधता का एक साथ उद्भव एवं विकास भारत जैसे सहिष्णु देश में ही सम्भव है। पंथों और जातियों के संघर्ष भी यहाँ हुए लेकिन लोक जीवन इसके बावजूद भी सहिष्णुता और समन्वय की भावना से प्रेरित रहा। भारतीय चिन्तन और दर्शन की विशेषता है मानव मात्र का कल्याण। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान रोमा रोला ने ठीक ही कहा है, ''अगर इस धरती पर कोई ऐसी जगह है जहाँ सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों से ही मनुष्यों के सारे सपने आश्रय और पनाह पाते रहे तो वह जगह हिन्दुस्तान ही है।'' भारत के अतीत से प्राप्त होने वाली प्रेरणा यदि छात्रों के जीवन का अंग बन जाए तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारा जीवन सुखमय हो जाएगा और राष्ट्रीय एकता स्वतः मजबूत हो जाएगी।

धर्म और राष्ट्रीयता में कोई विरोध नहीं। सच तो यह है कि उन्नतिशील राष्ट्रों में इस राष्ट्रीयता की भावना ने धर्म का स्थान ले लिया है। धर्मों की सही जानकारी के अभाव में छात्र का धार्मिक दृष्टिकोण न केवल संकुचित हो जाता है बल्कि बाहरी साम्प्रदायिक भावनाएँ उस पर प्रभावी होकर गुमराह करने लगती हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय एकता बाधित होने लगती है। प्रत्येक शिक्षक का यह कर्तव्य है कि छात्र के हृदय में यह बात बैठाए कि ''मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।''

भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक तथ्य और घटनाएँ हैं जो कि छात्रों में राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न कर सकते हैं। हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता हमारे सामूहिक प्रयास का प्रतिफल है जिसमें सभी धर्मों और जातियों ने अपनी कुर्बानी दी। अतः छात्रों में राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करने के लिए शिक्षक को अपने अध्यापन में इतिहास की उन बातों, तथ्यपरक घटनाओं, तथा साथ ही चन्द्रशेखर आजाद, भगत

सिंह, राम प्रसाद विस्मिल जैसे भारत माता के अमर सपूतों की शहादत का भी बारम्बार प्रसंगानुसार उल्लेख करना चाहिए जो कि सारे समुदाय की सामूहिक स्मृति हैं।

एक राष्ट्र के लिए निरन्तर प्रयत्नपूर्ण संकल्प करने की आवश्यकता होती है। छात्रों में राष्ट्रीय एकता का संकल्प उत्पन्न करने के लिए शिक्षक को अपना अध्यापन कार्य ध्येय भावना से करना होगा और उसके इस प्रयास से ही राष्ट्रीय एकता सम्भव हो पाएगी। अतीत की उपलब्धियों के प्रति अभिमान और उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न करना उसका प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। मानसिक हीनता से ग्रस्त शिक्षक अपने छात्रों में राष्ट्रीय भावना का स्फुरण नहीं कर सकता। वृहत्तर हितों के लिए व्यक्तिगत हितों को त्यागने की सतत प्रेरणा छात्रों को देनी चाहिए। छात्रों को भावात्मक और मानसिक दृष्टि से तैयार करना होगा जिससे शिक्षा के उपरान्त वे समाज के बीच अपने को न केवल समायोजित कर सकें बल्कि उसके उन्नयन में सहयोग देने के लिए सतत तत्पर रहें।

हमारे राष्ट्रीय चरित्र की एक कमी आज भी बनी है कि एक आदर्श शिक्षक अपने अध्यापन कार्य में उन अवसरों का भरपूर उपयोग नहीं कर पाता जिनमें सामूहिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता होती है। हमारे अहिंसक राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता का मुख्य रहस्य यही था कि महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश ने सामूहिक रूप से कार्य करने की आदत रचनात्मक कार्यक्रमों के अन्तर्गत डाली थी।

यह जनतन्त्र का युग है। समय के साथ धारणाएँ, रीतियाँ, और परम्पराएँ बदलती रहती हैं। छात्रों में एकता का भाव तभी भरा जा सकेगा जब शिक्षक धार्मिक, सामाजिक पूर्वाग्रहों से मुक्त हों तथा नवीन मान्यताओं के अनुरूप न केवल अपने को ढाले बल्कि अन्धविश्वास, रूढ़ियों तथा पुरातन विचारों के आवश्यक मोह को त्यागे तथा छात्र में परिवर्तित और अनिवार्य विचारों का समावेश करे। शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह छात्रों को उस उत्तरदायित्व के वहन करने योग्य बनाए जो कि भविष्य में उसके सामने आने वाले हैं। संविधान स्वयं में कुछ नहीं जब तक उसको कार्यान्वित करने के लिए उच्च कोटि की बुद्धि, सार्वजनिक भावना और देश हित के प्रति अटूट आस्था न हो।

आज वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि छात्र सोचने-समझने, आचार-विचार के क्षेत्र में संस्कारित एवं उन्नत स्तरों के प्रतिनिधि बनें। शिक्षित व्यक्तियों में कदाचारों एवं हीन प्रवृत्तियों के स्थान पर मानवता के श्रेष्ठ गुण ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के भाव, नैतिकता के उदात्त भाव, लोकतान्त्रिक आधार, उदात्त धार्मिकता एवं वैचारिक उच्चता और जीवन में सरलता के गुण प्रतिष्ठित हों तब जाकर एक कुशल शिक्षक अपने छात्र के अन्दर लोकहित तथा राष्ट्रीय एकता का भाव भर सकता है।

सन्दर्भ

१.	प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति	-	ए.एस. अल्टेकर
२.	शिक्षण कला	-	आत्मानन्द मिश्र
३.	भारतीय शिक्षा के दार्शनिक	-	कीर्तिदेवी सेठ
४.	शिक्षा के सिद्धान्त	-	देव नारायण मुकर्जी
५.	भारतीय शिक्षा दर्शन	-	राम सकल पाण्डेय
६.	भारतीय शिक्षा दर्शन	-	राम नाथ वर्मा
७.	भारतीय शिक्षा का इतिहास	-	सरजू प्रसाद चौबे
८.	शैक्षिक समाजशास्त्र	-	सीताराम जायसवाल
९.	शिक्षा विज्ञान	-	लक्ष्मी नारायण गुप्त
१०.	प्राचीन भारत में शिक्षा के मनीषी	-	आर.एस. पाण्डेय

डॉ० प्रदीप राव-

मैं १९८९ ई. में स्नातक कला द्वितीय वर्ष का छात्र था। स्नातक प्रथम वर्ष का परीक्षा परिणाम आ चुका था। गोरखपुर विश्वविद्यालय में एक वर्ष रह लेने के कारण झिझक कम हो चुकी थी। शहरी जीवन से परिचित हो चुका था और धीरे-धीरे किसी से भी मिल लेने एवं बात करने का साहस पैदा हो रहा था। तिथि तो याद नहीं, किन्तु यह ध्यान में है सितम्बर का महीना था। प्राचीन इतिहास की कक्षा में नामांकन हेतु प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग में गया, नामांकन कराया और विभाग के द्वार के बगल में विभागीय पुस्तकालय में व्यवस्थित बैठने और पढ़ने की सुविधा देखकर पुस्तकालय में प्रवेश कर गया। किन्तु अभी मेरे कदम अन्दर बढ़े ही थे कि पुस्तकालय प्रभारी ने मुझे रोककर कक्षा पूछा और यह जानकर कि मैं स्नातक का विद्यार्थी हूँ, यह कहते हुए कि यह पुस्तकालय एम.ए.(स्नातकोत्तर) के छात्र-छात्राओं के लिए है, मुझे अन्दर जाने से रोक दिया। जब मैंने अपनी बात रखनी शुरू की तो अन्ततः पुस्तकालय प्रभारी ने यह कहकर अपना पिण्ड छुड़ा लिया कि 'तुम विभागाध्यक्ष से अनुमति लेकर ही अन्दर जा सकते हो।' यद्यपि कि मुझे ध्यान है कि पढ़ने की बहुत चाहत थी ऐसा नहीं, किन्तु किसी कक्षा को आधार बनाकर पुस्तकालय में पढ़ने से रोका जाना मुझे बुरा लगा और यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी; सो साहस कर मैं विभागाध्यक्ष कक्ष की ओर बढ़ गया। दरवाजे पर लगे पर्दे के अन्दर झाँककर जैसे ही अन्दर जाने की अनुमति माँगी, अन्दर विभागाध्यक्ष की कुर्सी पर बैठे गाँधी आश्रम के मटके के लकलक साफ चमकते कुर्ते से झाँकते दिव्य चेहरे पर गजब की हँसी के साथ मेरा जैसा स्वागत हुआ, वह स्मृति अब तक अटल है। विभागाध्यक्ष ने कहा- ''आइये साहब! आपका स्वागत है।'' और मैं उनके पास तक पहुँचते-पहुँचते उनका हो चुका था; तभी अगला प्रश्न- ''कहिए महाशय! आपकी क्या समस्या है?'' मैंने अभी-अभी घटित पुस्तकालय की बात बतायी। विभागाध्यक्ष ने कहा- तो आप पुस्तकालय में पढ़ना चाहते हैं, नियम तो यही है कि विभागीय पुस्तकालय में एम.ए. के छात्र-छात्राएँ पढें; किन्तु मैं अपवाद में भी विश्वास रखता हूँ और पढ़ने वाले किसी भी विद्यार्थी को पुस्तकालय में पढ़ने से क्यों रोकूँगा। किन्तु तभी विभागाध्यक्ष का अगला प्रश्न, जिसका सामना करने को मैं तैयार नहीं था, 'आपका प्रथम वर्ष में अंक कितना है?' अचकचाते हुए मैंने बताया छियालीस प्रतिशत। अब विभागाध्यक्ष महोदय गम्भीर हो गये, तुरन्त पूछा- 'इतने कम अंक क्यों मिले?' मैंने कहा- 'मैं नहीं जानता, किन्तु मैंने पूरे परिश्रम से पढ़ाई की, परीक्षा में सभी प्रश्नों के उत्तर भी लिखे थे।' फिर वही हँसी और उन्होंने कहा कि ''कारण मैं बताऊँगा। अब आप इस समय जो पढ़ रहे हैं उससे एक प्रश्न का उत्तर लिखकर मुझे कल दिखायें, कल ही आपको कारण बताऊँगा और विभागीय पुस्तकालय में पढ़ने की अनुमति भी दूँगा।'' मैं उस कक्ष से वैसे आह्लादित होकर निकला जैसे कि कोई जग जीत चुका हूँ। तब तक मैं यह नहीं जानता था कि जिस विभागाध्यक्ष से मिलकर एक जीवन की दिशा बदलने वाली स्मृति लेकर मैं बाहर निकल रहा हूँ उनका नाम प्रो० शैलनाथ चतुर्वेदी है। बाहर निकलकर नामपट्टिका पढ़ी और इस क्षणिक भेंट से मन में उनके प्रति उत्पन्न श्रद्धा के साथ मैं आवास पर चला आया, आगे की कक्षाएँ नहीं पढ़ीं। मैं 'हर्ष की राजनीतिक उपलब्धियाँ' प्रश्न का उत्तर लिखने में भिड़ गया। पता नहीं कौन सा जुनून पैदा हुआ? रात्रि के साढ़े बारह बजे प्रश्नोत्तर पूरा कर मैं विजयीभाव में अँगड़ाई लेता हुआ उठा और टहलने लगा। रोज खा-पीकर पढ़ने के लिए बैठने पर सिर चढ़कर नाचने वाली नींद पता नहीं कहाँ गायब थी। मैं बेसब्री से सुबह की प्रतीक्षा करते-करते ही जाने कब सो गया। सुबह जब नींद खुली तो सामने वही ठहाका लगाकर स्वागत करने वाला चेहरा। तैयार हुआ और सीधे प्राचीन इतिहास विभाग पहुँचा। मुझे लगा कि

मैं पहले पहुँच गया हूँ, किन्तु विभाग में घुसते ही पता चला कि चतुर्वेदी जी आ चुके हैं। मैंने उनके कक्ष की चौखट पर दस्तक दी और अभी कुछ पूछूँ तब तक फिर वही अन्दाज। 'आइये साहब! लाइये देखें, आपने क्या लिखा है?' मैं विजयी मुद्रा में अपनी कॉपी बढ़ा दी। एक क्षण के मौन के बाद दिव्य मुस्कान के साथ शैलनाथ जी ने कलम निकाली और देखते-देखते पहले पैराग्राफ में ही लगभग सात शब्दों को घेर दिया और कहा कि 'आपको कम अंक इसीलिए मिलते हैं।' कहीं मात्रा गलत थी, कहीं विराम-चिह्न नहीं लगे थे, कहीं कर्ता और क्रिया का सम्बन्ध ठीक नहीं था। मुझे अपनी एक गलती का एहसास हो ही रहा था तब तक उन्होंने पृष्ठ गिनना शुरू किया- 'एक,दो,.....बाइस।' फिर कहा कि 'परीक्षा में यह प्रश्नोत्तर तीस मिनट में लिखना होता है। अतः इस पूरी सामग्री को उतने में लिखिए जितना तीस मिनट में लिख सकते हों।' और फिर क्या था; वे समझाते जा रहे थे मैं मन्त्रमुग्ध सुनता जा रहा था। लगभग पन्द्रह मिनट बाद उन्होंने कहा ठीक कर फिर कल लाइए। उस प्रश्नोत्तर को मैं लिखकर ले जाता, वे संशोधित करते, सुझाव देते, मैं पुनः उसे ठीक करने में लग जाता। मुझे याद है ग्यारहवीं बार मेरा प्रश्नोत्तर यह कहकर ठीक मान लिया गया कि 'अब यदि आप परीक्षा में ऐसे तो आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होंगे।' इस बीच मैं कब विभागीय पुस्तकालय में जाने लगा मुझे याद नहीं। सम्भवतः उन्होंने पुस्तकालय प्रभारी को मेरे प्रवेश की अनुमति दे दी थी। चूँकि मुझे रोका नहीं गया इसलिए मुझे यह ध्यान नहीं रहा कि पुस्तकालय में जाने की अनुमति लेना अभी शेष है। इस घटना के बाद मेरे अध्ययन के साथ-साथ भाषा, लेखन विधि इत्यादि में परिष्कार होता गया। शैलनाथ जी के व्यवहार की यह एक घटना बानगी है। उनके आचरण एवं व्यवहार की ऐसी दर्जनों घटनाएँ हैं जो लगातार मेरे मन पर प्रभाव छोड़ती गयीं और मुझे लगने लगा कि मुझे शैलनाथ जी जैसा प्राध्यापक बनना है और फिर कभी किसी अन्य प्रतियोगी परीक्षा का आवेदन-पत्र मैंने कभी नहीं भरा, शिक्षक बना। मैं महसूस करता हूँ कि शैलनाथ जी के स्वयं के जीवन से, उनके आचरण एवं व्यवहार से जो प्रेरणा एवं मार्गदर्शन मिला वह तमाम प्राध्यापकों, मार्गदर्शकों के प्रबोधन से प्राप्त न हो सका। अतः मुझे लगता है कि 'प्राध्यापक' का जीवन यदि प्रेरणास्पद है तो वह अपने समान तमाम प्रकाश-स्तम्भ खड़ा करता जायेगा, और यही उसके जीवनभर की ऐसी कमायी हुई अमूल्य पूँजी होगी जो अन्य किसी भी पेशे से नहीं कमायी जा सकती।

वस्तुतः जब वर्तमान युग में शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी इत्यादि पर चर्चा होती है तो हम अतिवाद के दो छोर पर होते हैं। एक गुरुकुल के गुरु को शिक्षक का आदर्श बना देते हैं तो दूसरी तरफ शिक्षक की तुलना समाज में अन्य वर्ग-समूहों से करने लगते हैं। ये दोनों अवधारणाएँ दो अतिवादी छोर पर खड़ी हो जाती हैं। वर्तमान समय में शिक्षण संस्थानों का जो स्वरूप है, शिक्षा का जो स्वरूप है और जितनी बड़ी मात्रा में वेतनभोगी शिक्षकों की नियुक्ति है, इसमें सभी शिक्षक 'गुरु' होंगे यह कल्पना ही बेमानी है। किन्तु शिक्षक यदि वेतनभोगी कर्मचारी होगा तो उस देश की शिक्षण संस्थाएँ मात्र मजदूर पैदा करेंगी, 'मनुष्य' तो पैदा नहीं कर सकतीं। ऐसे में सभी शिक्षक 'गुरु' तो नहीं हो सकते; किन्तु 'शिक्षक' तो हो ही सकते हैं। इनमें एकाध तो गुरु हों उन अपवादों का नमन किया जाता है, वे पूज्य हो जाते हैं। जहाँ तक 'शिक्षक' के आदर्श, आचरण एवं व्यवहार का प्रश्न है, तो स्वाभाविक है कि शिक्षक की परिकल्पना वेतनभोगी कर्मचारी अथवा नौकर की नहीं अपितु मनुष्य निर्माणकर्ता के रूप में की जाती है और होनी भी चाहिए। शिक्षक द्वारा विषय ज्ञान कराना पहली वरीयता है, तभी विद्यार्थी उसके निकट आयेंगे। और जब तक विद्यार्थी किसी प्राध्यापक के निकट नहीं होंगे आचरण-संस्कार की शिक्षा दी ही नहीं जा सकती। आज का विद्यार्थी विषय-ज्ञान रहित शिक्षक को स्वस्फूर्त नकार देगा। अतः आदर्श शिक्षक के लिए अपने

विषय का विशेषज्ञ होना पहली अनिवार्य शर्त है। विषय की विशेषज्ञता कोरे पुस्तकीय ज्ञान मात्र से नहीं अपितु सतत अभ्यास, चिंतन और शोध से प्राप्त होती रहती है। अपने विषय पर पूर्ण अधिकार के साथ आदर्श शिक्षक के लिए अध्यापन-क्षमता भी उत्कृष्ट होनी चाहिए। महाकवि कालिदास ने भी 'मालविकाग्निमित्र' में लिखा है कि श्रेष्ठ शिक्षक वही है जिसकी अपने विषय में गहरी पैठ हो तथा अध्यापन-शैली भी छात्रों के ज्ञानार्जन में सफल हो।

श्लिष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषमुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव च।। (मालवि. १.१६)

कालिदास वहीं आगे कहते हैं शिक्षक यदि अध्ययन-अध्यापन केवल जीविकोपार्जन के लिए करता है तो वह ज्ञान का विक्रेता वणिक् के समान है।

यस्यागमः केवलं जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति। (मालवि. १.१७)

किन्तु यदि आदर्श शिक्षक के सन्दर्भ में विचार समग्रता में किया जाय तो यह बात ध्यान में आती है कि किसी राष्ट्र-समाज में शिक्षक का निर्माण उस समाज के जीवन-मूल्य, शिक्षण संस्थाओं एवं उसके आर्थिक स्वरूप पर निर्भर करता है। जीवन-मूल्य से हीन समाज उच्चादर्श से युक्त शिक्षण संस्थाओं का निर्माण नहीं कर सकता और उच्चादर्श के प्रति लापरवाह शिक्षण संस्थाओं से अपवाद को छोड़कर आदर्श शिक्षक पैदा नहीं हो सकते। वर्तमान युग इसी संक्रान्ति के युग में प्रवेश कर रहा है, जहाँ रटी-रटायी पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ाने की नौकरी करने वाले वेतनभोगी नौकरों की फौज तो खड़ी होती जा रही है किन्तु आचरण-व्यवहार से शिक्षक का जीवन जीने वाले प्राध्यापकों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है। आश्चर्य तो तब होता है जब जनवरी से ही शासकीय-अर्द्धशासकीय महाविद्यालयों/विद्यालयों के अधिकांश शिक्षक आयकर की गणना में व्यस्त दिखते हैं। जितनी गम्भीर चर्चा 'आयकर' की गणना पर वे कर रहे होते हैं उनमें से कम शिक्षक इतना गम्भीर अपने विषय पर बातचीत करते मिलते हैं। विश्वविद्यालय-महाविद्यालयों के शिक्षकों का एक स्वरूप उत्तर-पुस्तिकाओं के मूल्यांकन में दिखता है जहाँ एक-एक कॉपी का हिसाब रखते हुए अधिकांश शिक्षक अधिक से अधिक कॉपी जाँचने की होड़ में जी-जान से जुटे होते हैं। शिक्षक आज यदि अपनी गरिमा खो रहा है तो इसका प्रमुख कारण 'व्यवस्था' है। सरकार शिक्षकों के निर्माण पर नहीं नियुक्ति पर चिन्तित और सक्रिय है। जिस मार्ग से शिक्षक बनना पड़ रहा है, नियुक्ति का वह सरकारी रास्ता भ्रष्टाचार के दलदल से होकर गुजरता है। लाखों रुपये देकर जो शिक्षक नियुक्त होगा वह शिक्षक तो नहीं ही बन पायेगा। शिक्षकों का एक दूसरा समूह स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों-विद्यालयों ने सृजित किया है, जहाँ अधिकतर प्रबन्ध-तंत्र उन्हें सम्मानित वेतन देना तो दूर शिक्षक का सम्मान भी नहीं दे पा रहे। इन शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों की स्थिति आत्मग्लानि से हतोत्साहित और बेबस मजदूर से भी बदतर है।

तथापि ऐसे शिक्षकों की भी कमी नहीं है जो रुचि-स्वभाव से शिक्षक हैं, जिन्हें देखकर प्रेरणा ग्रहण की जा सकती है और जीवन जीने की दिशा प्राप्त की जा सकती है; किन्तु ऐसे शिक्षक व्यवस्था की देन नहीं हैं, वे स्वशासित, स्वअनुशासित और स्वनिर्मित हैं। फिलहाल शिक्षक का जीवन तो एक ऐसे नायक का जीवन होता है जो ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म की ऊर्जा से परिपूर्ण आत्मसम्मान से फकीरों की भाँति जीता है। अपने आस-पास, आगे-पीछे चलने वाले विद्यार्थियों एवं समाज को अपनी दिव्यता से प्रकाशित करता है। ऐसा शिक्षक ही अपने शिष्यों की ऐसी लम्बी शृंखला का निर्माण करता है जिसकी फकीरी किसी भी अरबपति-खरबपति की अमीरी पर भारी पड़ती है। ऐसा शिक्षक ही क्रान्ति लाता है। ऐसा ही शिक्षक

समय आने पर समाज का नायक बनता है, युगद्रष्टा बनता है। किन्तु ऐसा शिक्षक बनने के लिए आध्यात्मिक आत्मबल चाहिए; स्पष्ट जीवन-दृष्टि चाहिए; स्पष्ट लक्ष्य चाहिए; मनमौजी स्वभाव चाहिए; सहजता-सरलता का अवलम्बन चाहिए। ऐसे में आदर्श शिक्षक का आचरण एवं व्यवहार अपरिभाषित और अकथ्य है। आध्यात्मिक आत्मबल से युक्त स्वभाव से शिक्षक का आचरण एवं व्यवहार ही 'आदर्श' का प्रतिमान बनता है। वह जो कहता है वही प्रमाण है, जो सोचता है वही सृजन है और जो जीता है वही जीवन का प्रशस्त मार्ग है। ईश्वर हमें ऐसे मार्ग का हमराही बनने का साहस, शक्ति और प्रेरणा दे।

डॉ. अविनाश प्रताप सिंह

इसमें कोई सन्देह नहीं की आज शिक्षा का सम्पूर्ण क्षेत्र विशेषकर उच्च शिक्षा अराजकता, भ्रष्टाचार और कर्त्तव्यहीनता के दौर से गुजर रहा है। यहाँ उल्लेखनीय यह तथ्य और भी निराशा जनक है कि इस बात को सभी जानते हैं और उनमें से अधिकतर उसे सहज स्वीकार भी करते हैं कि पूरी व्यवस्था चौपट होती जा रही है। देश में अन्य व्यवस्थाएं जैसे चल रहीं है उसी प्रकार शिक्षा-व्यवस्था भी चल रही है। कहा भी जाता है कि किसी समाज की उन्नति शिक्षा व्यवस्था की सुदृढ़ता पर आधारित होती है। शिक्षण संस्थाए इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका में आ जाती है। शिक्षण संस्थाओं का महत्व उसके स्थापत्य के साथ-साथ शिक्षक की गुणवत्ता और उनके कर्त्तव्यपराणयता पर आधारित होता है। शिक्षक में सेवा का भाव उसे अच्छे शिक्षक के रूप में स्थापित करने का महत्वपूर्ण माध्यम होता है। शिक्षक में संवेदना हीनी ही चाहिए इसमें कोई दो राय नहीं है। जबकि आज का वर्तमान शिक्षक शिक्षण कार्य को व्यवसाय के रूप में देखता है और अन्य व्यवसायों की तरह इसमें भी अधिक से अधिक कमाई का साधन पैदा करने का प्रयास करते हुए दिखाई पड़ता है। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षण कार्य वृत्ति नहीं प्रवृत्ति होनी चाहिए।

शिक्षक का अर्थ क्या है? जो शिक्षा देता है वह शिक्षक है, शिक्षा वह मंत्र है जिसे शिक्षक अपने ज्ञान और चरित्र से, कथनी और करनी से देता है (शिक्षक के लिए चरित्र का पवित्र होना अनिवार्य है; कथनी और करनी में अन्तर नहीं होना चाहिए) शिक्षक वहीं है जो मन से, मस्तिष्क से, आत्मा से, चेतना से देता रहता है। जिसके लिए जगह की कोई पाबन्दी न हो अर्थात् कक्षा में, कक्षा से बाहर भी कुछ न कुछ देता रहता है वही सही मायने में शिक्षक है। इस दृष्टि से शिक्षक सार्वकालिक और सार्वदोशिक होता है। यह है आदर्श शिक्षक का न्यूनतम मानक।

अब प्रश्न यह उठता है कि आज के इस भौतिकवादी, सुविधाभोगी और भागमभाग (पैसे के पीछे) भरे जीवन में शिक्षक बनना और वह भी आदर्श शिक्षक बनना क्या आसान और सरल है? लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत भूमि आदर्श, त्यागी, कर्त्तव्यपथ पर अडिग चलने वालों और दूसरों के लिए जीने वालों से भरी रही है। जिनका अनुकरण करके कोई भी व्यक्ति साहसी, संयमी वन सकता है और पथभ्रष्ठ होने से बच सकता है और स्वयं का भला करते हुए देश और समाज का भला (शिक्षा के माध्यम से) कर सकता है। यदि शिक्षक अपने अन्दर सीखने और अच्छा करने की आदत डालने की प्रवृत्ति विकसित करे तो समाज, परिवार या व्यक्ति बाधा नहीं बन सकते। इसलिए शिक्षक को स्माज में अपनी भूमिका पहचानी ही होगी।

शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों की नियुक्ति के समय योग्यता हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के साथ ही साथ इस तथ्य का भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि वही लोग इस प्रवृत्ति में आये जो इस प्रवृत्ति से प्रेम करते हैं, उसके प्रति स्नेह रखते हैं तथा जीवन सादगी आधारित है। कम से कम शिशक के लिए

सन्यासी प्रवृत्ति अपरिहार्य है। मुझे लगता है कि आज सम्पूर्ण संकट के पीछे यही कारक सबसे प्रभावशाली है। (यहाँ सन्यासी का अर्थ जीवन में संयम और श्रम हो) शिक्षक समाज का दर्पण और मार्गदर्शक होता है। शिक्षक के लिए आध्यात्मिक पाठ्यक्रम भी चलाये जाने चाहिए इससे उनको जीवन-दृष्टि मिलेगी। साथ ही एक और बात विशेष उल्लेखनीय है कि शिक्षण संस्थानों के प्राचार्य और प्रबन्ध का ईमानदार चरित्र और सदआचरण व्यक्तित्व आदर्श शिक्षक की स्थापना में अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है ऐसा अनुभव करते हुए कह रहा हूँ। शिक्षण संस्थानों में भी आदर्श शिक्षक निर्मित हुआ करते हैं इसलिए शिक्षण संस्थानों में पारिवारिक परिवेश और वातावरण अवश्य होना चाहिए। आदर्श शिक्षक बनने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति होना परम आवश्यक है जो तमाम समस्याओं में समाधान का मार्ग प्रशस्त करेगा।

अतं में यही कहना चाहूँगा कि शिक्षक को शिक्षक होने पर गर्व होना चाहिए और अगले जन्म में भी शिक्षक बने, ऐसी कामना करनी चाहिए। वही अच्छा और सच्चा शिक्षक है, वही आदर्श शिक्षक है।

ऐसे ढालो मेरे बच्चे को...

अब्राहम लिंकन का उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक को लिखा गया पत्र जिसमें उनका पुत्र पढ़ता था। अब्राहम लिंकन संयुक्त राज्य अमरीका के सन् १८६१ से १८६५ ई. तक १६वें राष्ट्रपति थे।

''.....मैं जानता हूँ, उसे समझना चाहिए कि सब लोग निष्पक्ष नहीं है, सब लोग सच्चे नहीं हैं। लेकिन उसे यह शिक्षा भी दो कि दुनिया में अगर दुष्ट लोग हैं, तो बहादुर भी हैं; कि जहाँ स्वार्थी राजनीतिज्ञ हैं, वहीं समर्पित नायक भी हैं। उसे शिक्षा दीजिए कि जहाँ दुश्मन हैं वहीं दोस्त भी हैं। मैं जानता हूँ कि इसमें समय लगेगा, लेकिन उसे सिखाइए कि कमाया हुआ एक डालर भी मुफ्त पाए हुए पाँच डालरों से अधिक मूल्यवान होता है। उसे शिक्षा दीजिए ताकि वह हारना और जीतना सीख सके। उसे ईर्ष्या से दूर ले जाइए और अगर हो सके तो उसे शान्त हंसी का रहस्य सिखाइए। उसे यह जल्दी जान लेना चाहिए कि निर्दयी लोग बहुत जल्दी दीन हो जाते हैं। अगर हो सके तो उसे पुस्तकों के चमत्कार बताइए लेकिन उसे आसमान में उड़ते पंक्षियों, धूप में उड़ती मधु-मक्खियों और हरे-भरे पहाड़ी इलाकों में खिले फूलों के अनन्त रहस्यों पर भी शान्ति से चिन्तन करने के लिए समय दीजिए''।

''स्कूल में उसे शिक्षा दीजिए कि बेईमानी करने के बजाय असफल हो जाना बहुत ज्यादा सम्मानजनक है। उसे सिखाइए कि वह अपने विचारों पर भरोसा रखे, भले ही हर कोई उन्हें गलत बताए। उसे शालीन लोगों के साथ शालीनता से और कड़े लोगों के साथ कड़ाई से बर्ताव करने की शिक्षा दीजिए। मेरे बच्चे को शक्ति देने की कोशिश कीजिए ताकि वह सबकी देखा-देखी भीड़ के साथ न चलने लगे। उसे सबकी बात सुनने की शिक्षा दीजिए लेकिन उसे यह भी सिखाइए कि वह सब कुछ सुना हुआ सच्चाई के पर्दे से छाने और उसके बीच से निकला अच्छा ही प्राप्त करें''।

''अगर हो सके तो उसे दुःख में हंसना सिखाइए। उसे सिखाइए कि आँसू आना लज्जा की बात नही है। उसे कुटिल लोगों को मुँह न लगाने और ज्यादा मीठा होने से सावधान रहने की शिक्षा दीजिए। उसे सिखाइए कि वह अपनी मेहनत और बुद्धिमानी को उसी के लिए इस्तेमाल करे जो उसका सबसे अधिक मूल्य लगा सके, लेकिन अपने दिल और आत्मा को न बेचे। उसे शोर मचाती भीड़ को अनसुना करने और सही बात पर संघर्ष करने की शिक्षा दीजिए''।

''उसे सौम्यता से सिखाइए लेकिन अच्छे फौलाद को दबाइए नहीं। उसमें अधीर होने का साहस आने दीजिए, लेकिन उसमें बहादुर होने का धीरज भी आने दीजिए। उसे हमेशा अपने आप पर पवित्र विश्वास रखने की शिक्षा दीजिए क्योंकि तभी वह हमेशा मनुष्यता पर पवित्र विश्वास रख पाएगा अर्थात उसे यह सिखाइये कि अगर वह समझता है कि वह सही है तो चीखता-चिल्लाता भीड़ पर ध्यान न दें और दृढ़ता से लड़ाई लड़ें''।

स्मरण

स्वामी विवेकानन्द

१. 'हिन्दू सिद्धान्तों के अनुसार जो व्यक्ति पैसे के लिए शिक्षण कार्य करता है, वह सत्य के प्रति द्रोह करता है। शिक्षा, धर्म का अविभाज्य अंग है-और न धर्म को बेचा या खरीदा जा सकता है, न शिक्षा को।'

२. कोई भी व्यक्ति मानसिक और बौद्धिक महानता तब तक प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक वह शारीरिक रूप से शुद्ध या पवित्र न हो। नैतिकता से ही शक्ति प्राप्त होती है। अनैतिक लोग सदा ही दुर्बल होते हैं और वे कभी भी बौद्धिक रूप से अपना विकास नहीं कर सकते। आध्यात्मिक रूप से तो उनका विकास हो ही नहीं सकता। राष्ट्रीय जीवन में अनैतिकता के प्रवेश करते ही उसकी नींव सड़ने लगती है।

३. किसी भी देश का जीवन रूपी रक्त उसकी शिक्षण संस्थाओं- विद्यालयों में होते हैं। अनिवार्यतः उन विद्यार्थियों को पवित्र होना चाहिए और यह पवित्रता उन्हें सिखाई जानी चाहिए। इसीलिए हम जीवन के उस खण्ड को ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं।

४. मनुष्य में जो सम्पूर्णता सुप्त रूप से विद्यमान है, उसे प्रत्यक्ष करना ही शिक्षा का कार्य है।

६. मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है-गुरूवास। शिक्षक अर्थात् गुरू के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती है। शिष्य को बाल्यकाल से ऐसे व्यक्ति (गुरू) के साथ रहना चाहिए, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समाने हो, जिससे उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे। हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरूषों द्वारा ही होता आया है। ज्ञान दान का भार पुनः त्यागियों के कन्धों पर पड़ना चाहिए।

७. शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया है और जो आत्मसात हुए बिना वहीं पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हों। हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बने, मानसिक वीर्य बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

श्री अरविन्द

१. शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं।''

२. मूलतः एक मात्र वस्तु जो तुम्हें अध्यवसाय के साथ करनी चाहिये वह यह

है-बालकों को अपने आप को जानना, अपनी निजी नियति, अपना-अपना मार्ग चुनना सिखाओ। अपने आपको देखना, समझना और संकल्प करना सिखाओ।

३. नैतिकता की शिक्षा का पहला नियम है सुझाव तथा आमन्त्रण। नैतिकता की शिक्षा पुस्तकों से नहीं पढ़ाई जाती। शिक्षक के जीवन के निजी आदर्श तथा उदाहरण, सत्संग तथा दिव्य जीवन, स्वभाव निर्माण के द्वारा नैतिक व्यवहार को विकसित किया जा सकता है। दोहरे मूल्यों की नैतिकता में स्थान नहीं है। इन सबसे बड़ी बात है सामाजिक अस्तित्व की, जो नैतिक शिक्षा के बिना नहीं हो सकता।

४. जो शिक्षा केवल जानकारी देने तक अपने को सीमित रखती है वह शिक्षा कहलाने योग्य नहीं है। समस्त ज्ञान का भण्डार मनुष्य के भीतर विद्यमान है। शिक्षा का काम यह है कि वह ज्ञान को बाहर से ठूंसने के बजाय अंदर से ज्ञान के जागरण की स्थिति उत्पन्न करे। राष्ट्रीय शिक्षा वह है जो अतीत से आरम्भ करके वर्तमान का पूरा उपयोग करते हुए एक महान राष्ट्र का निर्माण कर सके।

५. ''सच्ची शिक्षा के तीन सिद्धान्त'' सच्चे शिक्षण का पहला सिद्धान्त यह है कि कोई भी चीज सिखायी नहीं जा सकती। शिक्षक एक निर्देशक या कार्याध्यक्ष नहीं है, बल्कि वह तो सहायक और मार्गदर्शक है। उसका कार्य कोई सुझाव देना है, किसी चीज को जबर्दस्ती लादना नहीं। यह वास्तव में विद्यार्थी के मन को शिक्षित नहीं करता, वह तो केवल उसे उसके ज्ञान प्राप्ति के साधनों को पूर्ण बनने का ढंग बताता है। शिक्षा का दूसरा सिद्धान्त यह है कि मन के विकास में बच्चों की अपनी सम्मति भी अवश्य लेनी चाहिए। यह विचार कि जिस साँचे में माता-पिता या अध्यापक बच्चों को ढालना चाहते हैं उसी में बच्चों को ठोंक पीटकर ढाला जाये, एक बर्बर और अज्ञानपूर्ण अन्धविश्वास है। तीसरा सिद्धान्त यह है कि शिक्षा वर्तमान से भविष्य की ओर ले जाने में सहायक होनी चाहिए।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर

१. हमारे जीवन का प्रत्येक अगला दिन, पिछले दिन से कुछ ऐसे ढंग का हो, जिसमें हमने कुछ सीखा हो।

२. विद्यार्थी को विद्यालय में एक सुखद अनुभव होना चाहिये। प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से शिक्षण को प्रोत्साहित करना चाहिए। विद्यार्थियों को निकटस्थ वन में ले जाकर फूलों और जानवरों की जानकारी देना या चिकित्सकीय पौधों का ज्ञान कराना अनेक संभावित तरीकों में से एक है। इसी प्रकार विद्यार्थियों को योजनाबद्ध ढंग से आकाश पर्यवेक्षण तथा विभिन्न खगोलकीय उपादानों की खोज में लगाकर प्रारम्भिक नक्षत्रीय ज्ञान दिया जा सकता है।

आचार्य श्री राम शर्मा

१. तैत्तिरीय उपनिषद् में 'मातृदेवो भव', 'पितृ देवो भव' के साथ 'आचार्य देवो भव' कहकर गुरू का महत्व माता पिता के तुल्य बताया है। इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर तो :गुरुः साक्षात् परब्रह्म' कहकर उसकी सर्वोपरिता को भी स्वीकार किया गया है। वस्तु स्थिति भी ऐसी है किन्तु उसे संस्कारवान बनाकर सुसभ्य नागरिक बनाना आचार्य की जिम्मेदारी है। इस महान उत्तरदायित्व के कारण ही गुरु मनुष्य का देवता है।

२. विद्यालयों का प्रथम कर्तव्य यही है कि छात्रों को शालीनता, शिष्टता, सज्जनता एवं नागरिकता के आमूल चूल कर्तव्यों का प्रशिक्षण दें, जिनके आधार पर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। उदण्ड, उच्छृंखल, गुण्डे, अवज्ञाकारी, अशिष्ट बालक कितने ही विषयों की पुस्तकें कण्ठस्थ कर चुके हों या कितनी ही डिग्रियाँ प्राप्त कर लिये हों-कहा यही जायेगा कि विद्या प्राप्ति का प्रथम चिन्ह भी अभी इसमें नहीं उभरा।''

विनोबा भावे

१. शिक्षकों को अपनी हैसियत पहचाननी चाहिए। शिक्षकों को कोऽहम् (मैं कौन हूँ) का जवाब ढूंढ लेना चाहिए। शिक्षक होने के साथ-साथ दूसरा भी कुछ होने की स्थिति रहेगी तो शिक्षक के काम को न्याय नहीं मिलेगा। शिक्षक को अनुभूति होनी चाहिए कि मैं सबसे पहले शिक्षक हूँ। शिक्षक का काम श्रेष्ठ काम है। देश की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति के समान बच्चे उनके हाथ में सौंपे जाते हैं। उन्हें जो कुछ संस्कार, विद्या, मार्गदर्शन मिलेगा, वह शिक्षकों के जरिये मिलेगा। इससे ज्यादा महत्व का दूसरा कोई काम हो नहीं सकता। इसलिए शिक्षक को अगर अपनी हैसियत समझनी है तो शिक्षक धर्म के अनुसार उन्हें कुछ चीजें छोड़नी होंगी।

२. शिक्षण कर्तव्य कर्म का अनुषांगिक फल है। जो कोई कर्तव्य करता है, उसे जाने अनजाने वह मिलता है। लड़कों को भी वह उसी तरह मिलना चाहिए। औरों को वह ठोकरें खाकर मिलता है। छोटे लड़कों मे आज उतनी शक्ति नहीं आयी है, इसलिए उनके आसपास ऐसा वातावरण बनाना चाहिए कि वे बहुत ठोकरें न खाने पायें और धीरे धीरे स्वावलम्बी बनें, ऐसी अपेक्षा और योजना होनी चाहिए। शिक्षण फल है और **'मा फलेषु कदाचन',** यह मर्यादा इस फल के लिए भी लागू है।''

३. शिक्षण का कार्य कोई स्वतंत्र तत्व उत्पन्न करना नहीं है, सुप्त तत्त्व को जागृत करना है।

दीनदयाल उपाध्याय

१. यदि हम बड़ों में अच्छे संस्कार होंगे तो वे बच्चों को सहज ही मिलेंगें। गुलाब में यदि सुगंध होगी तो सहज ही वह लोगों की नाक में घुस जायेगी। बच्चों पर अच्छे संस्कार डालने के लिए माता को भक्त, पिता को योगी और आचार्य को ज्ञानी होना चाहिए।

२. ज्ञान, भावना तथा कर्म के संगम से ही शिक्षा तीर्थराज प्रयाग बनती है और दोहरे पर्व की अधिकारिणी बनती है। ज्ञान से सत्य की खोज होती है। भावना में शिव विचार संजोये जाते हैं और कष्ट निवारक कर्म ही सुन्दरता है। बालक को सत्यम, शिवम्, सुन्दरम् की त्रिवेणी में स्नान कराना ही शिक्षा का परम लक्ष्य है।

महन्त दिग्विजयनाथ

१. सभी स्तर की शैक्षणिक संस्थाओं में सभी प्रकार के विषयों का अध्ययन करने वाले शिक्षकों को चाहिए कि वे कटिबद्ध होकर अपने भाषणों के द्वारा विद्यार्थियों के मन एवं हृदय में यह भावना जागृत कर दें कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसके नैतिक और आध्यात्मिक विकास पर निर्भर है, न कि भौतिक वैभव की प्राप्ति एवं उसके लिए संघर्षरत होने पर।

डॉ. सम्पूर्णानन्द

१. यह अध्यापक का काम है कि वह अपने छात्र में चित्त एकाग्र करने का अभ्यास डाले। एकाग्रता ही आत्मसाक्षात्कार की कुँजी है। एकाग्रता का उपाय यह है कि छात्र में मैत्री, करुणा और मुदिता का भाव उत्पन्न किया जाये और उसे निष्काम कर्म में प्रवृत्त किया जाये।

२. अच्छे उपाध्याय के निकट पढ़ा हुआ स्नातक सत्य का प्रेमी और खोजी होगा। उसके चित्त में जिज्ञासा और ज्ञान का आदर होगा तथा हृदय में नम्रता, अनसूया, प्राणि मात्र के लिए सौहार्द। वह तपस्वी, संयमी और परिश्रमी होगा, सौन्दर्य का उपासक होगा और हर प्रकार के अन्याय, अत्याचार और कदाचार का निर्मम विरोधी होगा। धर्म और त्याग उसके जीवन की प्रबल प्रेरक शक्तियाँ होंगी। उसका सदैव यह प्रयत्न होगा कि यह पृथ्वी अधिक सभ्य और सुसंस्कृत हो, समाज अधिक उन्नत हो।

३. साधारणतः शिक्षक योगी नहीं होता, पर उसका भाव वही होना चाहिये जो किसी योगी का अपने शिष्य के प्रति होता है। अनेक शरीरों में भ्रमते हुए आज इसने नर देह पायी है और मेरे पास छात्र रूप में आया है। यदि मैं इसको ठीक मार्ग पर ला सका, इसके चरित्र के यथोचित विकास प्राप्त करने में बल लगा सका,

तो समाज का भला होगा और इसका न केवल ऐहिक वरन् आमुष्मिक कल्याण होगा।

यानुश कोचकि

१. कोई नहीं जानता कि बच्चा कब अधिक ज्ञान पाता है-जब ब्लैक बोर्ड की ओर देख रहा होता है तब या जब एक अदम्य शक्ति (यथा सूरजमुखी को घुमाने वाली सूर्य की शक्ति) उसे खिड़की से बाहर देखने को विवश करती है तब। ऐसे क्षण में उसके लिए क्या अधिक महत्वपूर्ण है, अधिक लाभदायक है-ब्लैक बोर्ड के चौखटे में जड़ा तार्किक जगत या खिड़की के बाहर फैली दुनिया? बच्चे की आत्मा के साथ जबरदस्ती मत कीजिए, प्रत्येक बालक के नैसर्गिक विकास के नियमों को ध्यान से देखिये, यह समझने की कोशिश कीजिये कि बच्चे की अपनी क्या खासयित है, किन बातों में उसका मन है और इसे देखते हुए उसे क्या चाहिये।

एनी बेसेन्ट

१. यदि हम अपने बच्चों की शिक्षा पर विदेशी प्रभावों एवं विदेशी आदर्शों की जकड़ को बना रहने देते हैं तो हमारे राष्ट्रीय जीवन को निष्प्रभ बनाने और राष्ट्रीय चरित्र को दुर्बल बनाने वाली इसे बड़ी और कोई बात नहीं हो सकती।

महात्मा गाँधी

१. सदाचार और निर्मल जीवन सच्ची शिक्षा का आधार है।

मदन मोहन मालवीय

१. भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखना भी भारतीय शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। हिन्दू, धर्म, उसके शास्त्र और हिन्दू संस्कृति की रक्षा होनी चाहिए। प्रत्येक भारतीय में भारत की भाषाओं, धर्म तथा संस्कृति के प्रति आदर भाव होना चाहिए। राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति, त्याग तथा सेवाभाव से युक्त होकर हम अपना जीवन सार्थक करने के साथ ही देश का गौरव बढ़ाए, यही हमारी शिक्षा का परम उद्देश्य है।

डॉ. राधाकृष्णन

१. शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य आंतरिक शक्तियों को विकसित, प्रशिक्षित तथा अनुशासित करने के साथ ही शिक्षार्थी को रूढ़िगत विचारो तथा अंधविश्वास के बंधन से मुक्त करना है। उसे कृत्रिम जीवन जीने की अपेक्षा प्रकृति से निकट संपर्क स्थापित करना सिखाना है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति का विकास कर उसमें लोक कल्याण की भावना भरनी है। त्याग, निस्वार्थ सेवाभाव तथा परमात्मा में आस्था रखने वाला व्यक्ति ही समाज और राष्ट्र का उत्थान कर सकता है।

प्रेमचन्द

१. जिस शिक्षा में समाज और देश के कल्याण की चिन्ता के तत्त्व नहीं हैं, वह कभी सच्ची शिक्षा नहीं कही जा सकती।

महन्त अवेद्यनाथ

१. प्राचीन शैक्षणिक चिन्तन में एक विशेष प्रकार के वातावरण की आवश्यकता पर बल दिया जाता था जिसमें कोई सार्थक शिक्षा सम्भव हो। प्रथमतः गुरू और शिष्य के बीच पूर्ण सौहार्द होना चाहिये तथा गम्भीर चिन्तन, सत्य के लिए जिज्ञासा, सेवा और श्रद्धा का वातावरण होना आवश्यक है।

२. अनुशासित विधि से बालकों की सुप्त प्रतिभा को विकसित करके समाज का उत्तरदायी घटक तथा राष्ट्र का प्रखर चरित्र सम्पन्न नागरिक बनाना हमारी शिक्षा पद्धति तथा समस्त विद्यालयों का प्रमुख उद्देश्य है।

❖❖❖❖❖

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतं गमय।।

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनां कुतो विद्या विद्यार्थिनां कुतः सुखम्।।

अपूर्वः कोऽपि विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्।।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्ये कदाचन्।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते।।

ज्ञातिभिर्वण्ट्यते नैव चौरेणापि न नीयते।
न दानेन क्षयं याति विद्यारत्नं महाधनम्।।

विद्यानाम नरस्य रुपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्यागुरूणां गुरुः।।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता।
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एवं नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।।

अजरामरवत् प्राज्ञः विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत एवं केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य।
काञ्चनमणि संयोगो न जनयति कस्य लोचनानन्दम्।।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्रोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

नक्षत्रभूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः।
पृथिवीभूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम्।।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति।।

मातेव रक्षति पितेव हिन्ते नियुङ्क्ते
कान्तेव चापि रमयत्ययनीय खेदम्।
लक्ष्मी तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

काकचेष्टा वकुलध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
स्वल्पाहारो गृहत्यागी छात्रस्य पञ्चलक्षणम्।।

❖❖❖❖❖